आदर्श जीवनमाला की [illegible] संख्या

महात्मा टाल्स्टाय

9 1910
CHRISTIAN COLLEGE

प्रकाशक

पं० ओङ्कारनाथ वाजपेयी

महात्मा टाल्सटाय

Onkar Press, Allahabad.

उदारचेता रशियन ऋषि काउन्ट लिओ

महात्मा टाल्स्टाय

"वे थे मित्र विश्व सारे के
वँधे न थे वे देश विशेष
वे, उनकी न जाति कोई थी
और न था कोई धर्म विशेष"

—समुद्र लहर की आत्मकथा।

लेखक,

श्रीनारायण चतुर्वेदी

अध्यापक जे० सी० मेनरी एम० ए० (हार्वर्ड)
यूइङ क्रिश्चियन कालिज, प्रयाग लिखित भूमिका समेत।

प्रकाशक

पं० ओंकारनाथ वाजपेयी

प्रयाग

पं० ओंकारनाथ वाजपेयी के प्रबन्ध से ओंकार प्रेस प्रयाग में मुद्रित।

प्रथमवार] सन् १९१७ ई० [मूल्य।-)

Very respectfully presented to Prof J. C. Maury M. A. by the author. Sukhdevi Etawah. 23-6-17

भूमिका

रूसी उपन्यास लेखक और सुधारक लिओ टाल्स्टाय (१८२८-१९१०), जिनके जीवन का वर्णन इन पृष्ठों में किया गया है, आधुनिक इतिहास की बहुत सी धाराओं से पूर्ण सम्पर्क रखते थे। कुछ साहित्य पूर्ण कथाओं ने, जिनमें उन्होंने अपने कुछ अनुभवों तथा विचारों को ग्रथित किया था, पहिले पहिल उन्हें प्रसिद्ध किया। किन्तु वे स्वयं इन आरम्भ के लेखों को कुछ मूल्यवान न समझते थे, वे उन विश्वासों को अधिक महत्व की वस्तु समझते थे, जो जीवन के अन्तिम दिनों में उनके हृदय में उत्पन्न हो गये थे। वे कहते हैं 'मैं एक अनुपम साहित्य सेवी तथा कवि गिना जाता था और इस कारण स्वभावतः मैं इस सिद्धान्त को मानने लगा, यद्यपि मैं विचारक तथा कवि था तथापि मैं नहीं जानता कि इस बीच में मैं क्या लिखता था और क्या शिक्षा देता था।' उन्होंने बहुत दिनों बाद अपनी पुस्तकों की महत्ता में उन्हें अपनी पुस्तकों के महत्व के विषय में इस कथन की सत्यता पर शंका बहुत दिनों बाद हुई। 'यद्यपि मैं कवि और विचारक था, तथापि मैं इतना सरल था कि मैं इस बात को न सोच सका कि जो बातें मैं दूसरों को सिखाने की चेष्टा कर रहा हूं उनके बारे में मुझे ही नहीं मालूम कि वे क्या हैं।' 'कज़्ज़ाक' तथा 'युद्ध और शान्ति' इस काल के उपन्यास हैं।

सन् १८७४ के लगभग टाल्स्टाय प्रत्येक वस्तु के बारे में शंका करने लगे और वे अपने इन आग्रह पूर्ण प्रश्नों 'क्यों,

'कैसे' 'किस लिये' को दूर न कर सके। कुछ समय तक वे आत्मघात करने का विचार करते रहे। फिर उन्होंने अध्ययन से संतोष प्राप्त करना चाहा किन्तु मनुष्योपार्जित ज्ञान उन्हें बिल्कुल व्यर्थ जान पड़ने लगा। अध्ययन से सन्तुष्ट न होकर वे अपने आस पास के लोगों के जीवन को मनन करने लगे और वे इस बात की जाँच करने लगे कि वे लोग उन प्रश्नों को जिन्हें वे इतना जटिल समझते हैं, किस प्रकार हल करतेहैं और उनका जीवन किस प्रकार व्यतीत होता है। किन्तु उच्च श्रेणी के लोगों के जीवन से, जिनके साथ वे पहिले रहते थे, उन्हें मालूम हुआ कि वे कुछ नहीं सीख सकते थे। उन्होंने उनके बारे में कहा है कि उनमें मनुष्य के सुख की पाँच आवश्यक बातों की कमी है:—

प्रकृति के साथ सम्पर्क, शारीरिक परिश्रम, सपरिवार जीवन, मनुष्यों के साथ व्यवहार, स्वास्थ्य तथा कष्टहीन मृत्यु।

किन्तु जब टाल्स्टाय जनता के जीवन तथा उनके सिद्धान्तों की जाँच करने लगे तब उन्हें विश्वास हो गया कि उनमें सच्चा विश्वास पाया जाता है। और केवल सरल विश्वास ही जीवन को अर्थमय जीने की सम्भावना प्रमाणित कर सकता है।

टाल्स्टाय ने लिखा है कि जब से मनुष्यजाति उत्पन्न हुई है तब से जहां जहां जीवन रहा है वहां वहां विश्वास भी रहा है और इसीसे जीने की सम्भावना हो सकी है। विश्वास ही जीवन की वह संज्ञा है जिसके कारण वह अपने को नष्ट नहीं कर डालता किन्तु जीवित रह सकता है। यह वह शक्ति है

जिससे हम जीवित रहते हैं। यदि मनुष्य में वह विश्वास न हो कि उसे किसी काम के लिये जीवित रहना आवश्यक है तो वह कदापि न जिएगा।

एक अनन्त ईश्वर, आत्मा का देवत्व, मनुष्य तथा ईश्वर के कामों की एकता आदि के भाव मनुष्य के अगम्य गहरे गुप्त विचारों में परिवर्द्धित हैं। ये विचार वे हैं जिनके बिना जीवन सर्वथा असंभव है, जिनके बिना स्वयं मेरी स्थिति न रहेगी। मैं इस बात को समझने लगा कि मुझे स्वयं अपने निज के बुद्धि बल पर निर्भर रहने तथा विश्वास के जो उत्तर दिये गए हैं उन पर ध्यान न देने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि इन प्रश्नों का केवल उत्तर वेही हैं जो विश्वास ने दिये हैं।

अन्त में टाल्स्टाय को एक ऐसा सिद्धान्त मिल गया जिससे वे अपनी कठिनाइयां हलकर सकते थे। वह सिद्धान्त जीसस के शब्दों में यह था कि 'बुराई को मत रोको।' जीवन की वह समस्या जो उन्हें चिन्तित कर रही थी मुख्य कर आचार सम्बन्धी थी और केवल आकस्मिक रीति ही से आर्थिक थी। और वे इस समस्या के निकट राजनैतिक दृष्टि से नहीं किन्तु धार्मिक दृष्टि से जाते हैं। उनकी प्रणाली बहुत सरल है। वे जीसस के इन वाक्यों 'बुराई को मत रोको' Resist not evil की शाब्दिक व्याख्या करते हैं, यह सिद्धान्त चाहता है कि किसी समय कुछ भी प्रतिरोध न किया जाय। टाल्स्टाय कुल आक्षेपों का केवल एकही उत्तर देते हैं– वह यह कि जीसस ने जो कहा था उनका तात्पर्य अवश्यही वही रहा होगा। किन्तु (जीसस) ने क्या कहा था? यह कुछ आवश्यक नहीं है कि जो कुछ उन्होंने कहा था उसका

शाब्दिक तात्पर्य लिया जाय, क्योंकि टालस्टाय ने अन्यत्र ठीक ही कहा है कि 'बुराई मत रोको' इसके सच्चे अर्थ यह हैं कि प्रेम के नियम के विरुद्ध कदापि कोई काम न करो। यह देख कर आश्चर्य होता है कि उन्होंने इस बात पर दृष्टिपात नहीं किया कि जब कभी प्रेम का नियम यह चाहता है कि बुराई का प्रतिरोध किया जाय। किन्तु वे शाब्दिक व्याख्या के सिद्धान्त का उपयोग सदा अविरुद्ध रूप से नहीं करते। क्योंकि वे इस आज्ञा 'अपने शत्रुओं से प्रेम करो' के बारे में कहते हैं कि चूंकि अपने व्यक्तिगत शत्रु से प्रेम करना असम्भव है इसलिये जीसस का यह तात्पर्य न रहा होगा। इस लिये वे कहते हैं कि जीसस युद्ध के विरुद्ध उपदेश दे रहे थे न कि व्यक्तिगत शत्रुता के विरुद्ध! ऐसा करना क्राइस्ट के वचनों को व्यवहार में लाने के लिये उनको सरल करने का प्रयत्न करना होगा और इसी के लिए स्वयं टालस्टाय दार्शनिकों को दोष लगाते हैं।

टालस्टाय व्यक्तिगत सम्पत्ति के घोर विरोधी हैं! सम्पत्ति से मतलब उस वस्तु से है जो मुझे दी गई है और जो केवल मेरी ही है। सम्पत्ति वह वस्तु है जिसको मैं जैसे चाहूं बर्त सकता हूं। जिसे मुझसे कोई नहीं ले सकता। जो जीवन पर्यन्त मेरे पास रहेगी, और जिसे काम में लाने, बढ़ाने और जिसकी उन्नति करने के लिए मैं बाध्य हूं। अतएव ऐसी सम्पत्ति किसी भी व्यक्ति के पास सिवाय अपने आप के कुछ नहीं है। किन्तु टालस्टाय इस सम्मति के लिए कोई प्रमाण नहीं देते।

टालस्टाय की मृत्यु के कुछ दिनों पहिले उनका एक पत्र, जिसे उन्होंने एक मित्र के पास लिखा था, प्रकाशित किया

प्राक्कथन

भगवान् कृष्ण और बुद्ध, स्वामी रामानुज और रामतीर्थ के इस प्यारे देश भारतवर्ष में पश्चिमी संसार के सर्वश्रेष्ठ महानुभाव टालस्टाय का जीवन चरित्र लेकर मैं आज उपस्थित हुआ हूं। यद्यपि वे पश्चिमी संसार के एक गिरे देश में पैदा हुये थे, तथापि वे केवल उसी देश के नहीं थे, वे सारे संसार के थे और उनका सारा संसार था। इस विश्वप्रेमी महात्मा का जीवन चरित्र हमारी भाषा में बहुत पहिले और अधिक योग्य महाशयों द्वारा लिखा जाना चाहिये था किन्तु कदाचित् हम महात्मा की मूर्ति की सुन्दरता को समझ नहीं सके थे और हमारे नवीन कानों में उनकी वृद्धावस्था का गम्भीर स्वर प्रभाव नहीं डाल सका था। किन्तु अब वह समय नहीं रहा जब हम प्रेम और विवेकके संदेश को सुना अन सुना कर दें। कितने ही महानुभावों के उद्योग से—जिनमें महात्मा गांधी मुख्य हैं—उनके विचारों का प्रचार हमारे देश में हो रहा है और हमें आशा है कि हम उनके संदेशे से यथोचित लाभ उठाएँगे।

वास्तव में महात्मा का जीवन चरित्र लिखना बड़ा ही कठिन है। मैंने जो कुछ उनके बारे में थोड़ा सा अध्ययन किया मुझे भय है कि वह पर्याप्त नहीं है। उनके कुल विचारों का समझना भी मेरे लिये अभी बहुत कठिन है। किन्तु मुझे सन्तोष है कि मैंने इन पृष्ठों में उनके मुख्य स्वरूप अर्थात् विश्वप्रेम, मनुष्य जाति का भ्रातृत्व, विवेक की सर्व श्रेष्ठता और निष्क्रिय प्रतिरोध को टूटे फूटे शब्दों में

दिखलाने की चेष्टा की है। मेरा विचार उनकी एक बृहद् जीवनी लिखने का है—किन्तु उसके लिये बहुत अधिक परिश्रम और अध्ययन की आवश्यकता है, अतएव यह नहीं कहा जा सका कि यह विचार कब पूरा होगा।

उनके ग्रन्थों का अनुवाद संसार की प्रायः सभी मुख्य मुख्य भाषाओं में होगया है। यदि कोई भाषा (जो अपने को उच्च पद पर समझती है) बची है तो हमारी हिन्दी ही। उनके उपन्यास, विशेष कर हिन्दी उपन्यासों के अधिकांश गन्दे उपन्यासों से उत्पन्न गन्दे विचारों को परिमार्जित करने के लिये आवश्यक हैं, किन्तु किसी भी जल्द बाज़ और परिश्रम से द्वेष रखने वाले महाशय को उनके अनुवाद की चेष्टा न करनी चाहिये, क्योंकि उनके भावों को सरल हिन्दी में ठीक ठीक व्यक्त करने के लिये बड़े अध्यवसाय की आवश्यकता है उनके विचारों का ख़ून करके उनके ग्रन्थों का अनुवाद होने के बजाय यही अच्छा है कि उनका अनुवाद न हो।

यह कहना मुझे आवश्यक प्रतीत नहीं होता कि इस छोटी सी पुस्तिका के लिखने में मुझे कई एक अँग्रेज़ी पुस्तकों का अवलम्ब ग्रहण करना पड़ा, क्योंकि यह एक स्वयं-सिद्ध तत्व है।

मुझे प्रसन्नता होगी यदि इन निस्सार और अयोग्य हाथों से लिखे पृष्ठों को पढ़कर लोग महात्मा टाल्सटाय से प्रेम करना सीखें और हिन्दी में उनके ग्रन्थों का अनुवाद करें। इतने ही से मैं अपने परिश्रम को उचित से भी अधिक सफल समझूंगा

स्पोर्टिङ्ग एण्ड लिटररी क्लब
दारागंज, प्रयाग
श्रीनारायणचतुर्वेदी बी.ए.

ओ३म्

टाल्सटाय का जीवन-चरित

प्रथम अध्याय

वंश और देश परिचय

भारतवर्ष में यूरप के जिन देशों का नाम बहुत प्रसिद्ध है किन्तु साथ ही जिनके बारे में हमारा ज्ञान बहुत ही परिमित है, रूस उन्हींमें से एक है। एक समय था जब 'रूसी आते हैं' 'रूसी आते हैं' की आवाज़ सर्वसाधारण में मची हुई थी और हमारी सरकार भी Russian Peril 'रूसी आतङ्क' को महत्व का प्रश्न समझती थी, किन्तु समय के फेर से वे दिन भुला दिये गये हैं। अब रूस हमारी स्मृति में केवल रूस-जापान युद्ध के कारण रह गया है। नहीं तो अब हम रूस के बारे में बिलकुलही उदासीन रहते हैं। और एक प्रकारसे रूस के प्रति हमारी यह उदासीनता उचित भी है, क्योंकि पिछले समयमें रूस-विशाल कायरूस—ने संसार की सभ्यता के बढ़ाने में कुछ भी योग नहीं दिया है। एशिया में रूसका नाम भय और घृणा के साथ लिया जाता है—यूरप में रूस दक़ियानूसी 'एशियायी साम्राज्य' के नाम से प्रसिद्ध है और इसके लिये प्रसिद्ध है कि वह अपने विशाल कायको और भी विस्तृत करनेकी इच्छासे यूरप के Balance of Powers को भंग करनेकी सदा खुले छिपे चेष्टा किया करता है। भूत रूसका इतिहास लगातार

विजय, देशोंके दबाने और भीषण युद्धोंकी कहानी भर है, और कदाचित् इसी कारणसे उसे संसारकी सभ्यताके बढ़ानेमें योग देनेका अवसर मिलाही नहीं। दूसरोंको सभ्यता देना तो दूर रहा स्वयं घरहीमें रूसकी दशा सभ्य देशों ऐसी नहीं है। इस बीसवीं शताब्दीमें भी यूरपमें रूसही एक ऐसा विशाल ईसाई देश है जिसमें राजाही सर्वेसर्वा, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है। कुछ दिनोंसे एक डूमा (पार्लियामेंट) बन भी गई किन्तु वह प्रजाके साथ सदा आँखमिचौनी का खेल खेला करती थी। ऐसी दशामें रूसमें जन साधारणकी अधिक उन्नतिकी आशा करनी व्यर्थ थी। परन्तु यह पुस्तक छपते छपते ही मार्च सन् १९१७ में एकाएक बिजली के समान समाचार आया कि रूस की प्रजाने राजाको राज्यसिंहासन से उतार दिया और प्रजाधिकारी राज्य स्थापित कर दिया। अब आशा है रूस भी अमरीकाके समान शीघ्र उन्नति करे। पिछली शताब्दीमें रूसमें भी जागृति होने लगी थी। नाना प्रकारके दल सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक-उन्नत होकर ज़ार की मजबूत मुट्ठीको ढीली करने का उद्योग करने लगे थे। इनउद्योगोंमें कोई कोई उद्योग उग्र भी थे और उन उग्र उद्योगोंको विफल कर देने के लिये ज़ार ने अपनी मुट्ठीको और भी कड़ी कर देना चाहा, इसी उथल पुथलमें रूसने कुछ महानुभाव उत्पन्न कर दिये उन महानुभावोंमें सर्वश्रेष्ठ महानुभाव इस चरित्रके नायक महात्मा काउण्ट लिओ निकोलोविच टाल्सटाय हुए जिन्होंने अपने पवित्र विचार और चरित्र द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्तकी और मनुष्य समाजमें विचारका एक नया युग उपस्थित कर दिया। जिस बीज को इस महात्माने बोया था वह

अब हाल ही में सफल हुआ है।

काउण्ट टाल्सटाय के वंशके बारेमें कईएक जनश्रुतियां प्रचलित हैं, कोई तो उनके वंशके आदि पुरुषको जर्मन, कोई लिथूएनियन और कोई तातारी खां बतलाते हैं। किन्तु इस वंशके पहिले व्यक्तिका नाम, जिसने काउण्टकी उपाधि पाई, पीटर टाल्सटाय था। पीटर टाल्सटाय एक प्रसिद्ध और योग्य राजनीतिविशारद व्यक्ति थे। ज़ार पीटर-महान उनपर विश्वास करते थे और उन्होंने उन्हें गुप्तचर विभाग का प्रधान नियुक्त किया था। किन्तु इनके चरित में एक बहुत गहरा कलंक लगा हुआ है। ज़ार पीटर-महान् बड़ाही योग्य किन्तु अत्यन्त क्रूर शासक था। उसने कई राजनैतिक कारणों से अपने पुत्र ज़ारविच अलक्सिस को मरवाडाला था और उस मन्त्रणा में काउण्ट पीटर टालस्टाय का भी हाथ था पीटर-महान के बाद ज़ारीना केथराइन भी काउण्ट पीटर टालसटाय का सम्मान करती रहीं किन्तु जब उनकी मृत्यु के बाद ज़ार पीटर-द्वितीय सिंहासन पर बैठे-जो मृत ज़ार पुत्र ज़ारविच अलक्सिसके पुत्र थे—तब उन्होंने उनकी उपाधि छीन ली और उनको बयासी वर्षकी अवस्थामें देशसे निर्वासित कर श्वेत समुद्रके किनारे सोलोवेट्सकी मठ में भेज दिया। यह स्थान अति ही शीतल है। कुछही दिनों बाद वहीं उनकी मृत्यु हुई। किन्तु ज़ारीना एलिज़बेथ ने 'काउण्ट' की उपाधि इनके वंशको अपने राज्यकालमें फिर दे दी।

काउण्ट लिओ टालसटाय के बाबा काउण्ट एलाया एक सीधे सादे, दयालु, कोमल हृदय, प्रसन्नचित्त और उड़ाऊ व्यक्ति थे। यह इतने बड़े उड़ाऊ वीर थे कि भोज, नाटक बाल-

नाच ताश इत्यादि में उन्होंने अपनी स्त्री की प्रायः सारी सम्पति बन्धक रख दी और अन्तमें जीवन यात्रा के निर्वाहके लिये उन्हें सरकारी नौकरी की प्रार्थना करनी पड़ी, अन्तमें उन्हें केजाँ के प्रान्त की गवर्नरी मिलगई, उनकी दादी भी, जोकि एक राजकुमारी थीं-प्रायः ऐसे ही स्वभाव की स्त्री थीं।

काउण्ट लिओ टालसटाय के पिताका नाम काउण्ट निकोलस टालसटाय था। जब वे नवयुवा थे तब यूरप में फ्रेंच वीर नैपोलियन के युद्ध चल रहे थे। सोलह वर्षकी अवस्थामें निकोलस फौजमें भर्ती हुए। किन्तु सन् १८१४ में जब वे किसी काम से जर्मनी भेजे गये तब फरासीसियों ने उन्हें क़ैद कर लिया और सन् १८१५ तक वे क़ैद रहे। इसके बाद उन्होंने फ़ौजसे इस्तीफ़ा दे दिया। कुछ दिनों बाद उनके पिता की मृत्यु होगई और उन्हें अपनी नष्टप्राय जायदादको संभालना पड़ा, उन्हीं दिनों उनका विवाह राजकुमारी मेरी वाल्कोन्स्की से होगया जिससे उनको अच्छी सम्मति मिली।

काउण्ट निकोलस सुन्दर पुरुष थे, वे अपनी जायदादके प्रबन्ध करनेहीमें लगे रहते थे। उस समय रूसमें ज़मींदार अपनी रियाया के साथ बड़ी क्रूरता का बर्ताव करते थे और उनको क्रीतदास की तरह समझते और कठिनशारीरिक दण्ड देने से भी नहीं हिचकते थे। किन्तु काउण्ट निकोलस ने कभी भी अपनी रैयत के साथ क्रूरता का बर्ताव नहीं किया, प्रत्युत वे उनके साथ सदा मुलायमियत से पेश आते रहे।

काउण्ट लिओ टालस्टाय की माता उनको केवल अठारह महीनेही का छोड़कर मर गयीं। इसलिये उनके चरित्र पर अपनी उदार-हृदया और सरला माता का कुछ अधिक प्रभाव

नहीं पड़ा। यद्यपि वे सुन्दर न थीं किन्तु वे बड़ीही विदुषी थीं। वे रूसी भाषा अच्छी तरह जानती थीं और शुद्ध लिख सकती थीं। इसके सिवाय वे फ्रेंच, अंग्रेज़ी, जर्मन और इटालियन भाषाएं भी जानती थीं। हृदय की वे इतनी शुद्ध थीं कि कभी क्रोध में भी उन्होंने किसी को गाली या झिड़की तक नहीं दी।

लिओ टाल्स्टाय की माता के दहेजमें निकोलस टाल्स्टाय को यासनाया पालयाना नामक गांवमें स्थित वालकान्स्की वंशकी जायदाद मिली, यह गांव—जो महात्मा टाल्स्टाय के कारण इतिहास प्रसिद्ध होगया है—टूलाके दक्षिणमें है और काफ़की सदर सड़कसे सटा हुआ है।

द्वितीय अध्याय

बाल्य काल

टाल्स्टाय ने स्वयं अपने बारेमें बहुत कुछ लिखा है। कितनीही पुस्तकों के साथ उन्होंने अपने जीवनकी घटनाएँ छपवायी हैं, उनका एक उपन्यास है 'शैशवावस्था, वाल्यावस्था और युवावस्था।" उसमें उन्होंने अपने आरम्भके जीवनका हाल लिखा है। किन्तु उसे हम उनका सच्चा आत्म चरित्र नहीं कह सकते क्योंकि उसमें सत्य बातोंके सिवाय उपन्यास सुलभ कल्पनासे भी काम लिया गया है।

टाल्स्टाय को अपने बचपन की बहुतसी बातें याद थीं। किन्तु उन्होंने स्वयं एक जगह लिखाहैः—"जब मैं तीन वर्षका

था तभी मैं घुटनों रेंगने, चलने और बोलने लगा था। किन्तु प्रयत्न करने पर भी मुझे स्नान करने और वस्त्र में लपटे रहने, इन दो बातों को छोड़ और कोई बात याद नहीं आती, मेरी स्थिति कब आरम्भ हुई? मैं कबसे जीने लगा? और मुझे जीवन के आरम्भकी घटना वर्णन करते हुए क्यों आनन्द आता है और क्यों और लोगों की तरह मैं भी यह सोचकर घबड़ाने लगता हूं कि एक दिन मुझे फिर उस स्थिति-हीन अवस्था में प्रवेश करना पड़ेगा जिसकी शब्दोंमें व्यक्त करने योग्य मुझे याद न रह जायगी।...........अपने पांच वर्ष की अवस्था की बातें कलही ऐसी जान पड़ती हैं—पांच वर्ष की अवस्था और इस अवस्था (वृद्धावस्था) के बीचमें केवल एक सिढ़ी भर हीहै; नवजात अवस्था से और पांच वर्षकी अवस्था तकका अन्तर कितना अधिक है, गर्भावस्था और नवजात अवस्थाके बीचका अन्तर तो इतना अधिक है कि नापा भी नहीं जा सकता इसी प्रकार स्थितिहीन अवस्था से गर्भावस्था का अन्तर तो इतना अधिक है कि उसके नापे जानेकी बात तो अलग रही उसकी विशालता की कल्पना भी नहीं की जा सकती।"

बालकपन में महात्मा टालस्टाय यरेमीवना नामक धाय और थियोडर रेसल नामक एक जर्मन परिचारक की रखवालीमें थे। इन दोके सिवाय टैशियाना येरगोल्स्की नामकी एक स्त्री भी उस समय परिवार में रहती थी यह टाल्स्टाय की दूरके सम्बन्धियोंमें से थी। उसे सब लोग 'बुआ' कहा करते थे। टाल्स्टाय उससे जितना स्नेह करते थे उतना किसी से नहीं करते थे। उनके जीवन पर इस स्त्री का बहुत प्रभाव

EWING ...

पड़ा। उसका स्वभाव कोमल था। वह स्नेहकी मूर्ति थी, और साथही उसमें चरित्रबलभी बहुत था। टाल्स्टाय केलिये तो वह दूसरी माता थी, आजन्म वह उनके साथ रही एक जगह काउण्ट ने स्वयं लिखा है:—"मेरे जीवन पर बुआ टैशियाना का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। उसने बाल्यावस्था ही में मुझे प्रेम का नैतिक आनन्द सिखलाया था। उसने मुझे शब्दोंसे कुछ भी नहीं सिखलाया किन्तु अपने सारे कार्य और कर्मसे उसने मुझमें स्नेह कूटकूट कर भर दिया था। मैंने देखा और मैं ने इस बातको मनही मन अनुभव किया कि प्रेम करनेमें उसे कितना आनन्द होता था और मैंने भी तब प्रेम के आनन्दको समझा। यह पहिली शिक्षा थी जो मुझे उससे मिली। दूसरी बात जो मैंने उससे सीखी वह एकान्त और शान्त जीवनकी सुन्दरता है।"

बुआ टैशियाना के उपरान्त महात्मा टाल्स्टाय के बालकपनके जीवन पर प्रभाव डालनेवाले व्यक्ति उनके बड़े भाई निकोलस थे। टाल्स्टाय स्वयं लिखते हैं :—

"निकोलस मुझसे ६ वर्ष बड़े थे। जब हम लोग फेनफैरन पहाड़ी पर खेलने जाया करते थे तब उनकी अवस्था १०–११ वर्ष की और मेरी ४–५ की रही होगी। मैं नहीं कह सकता कि हम सब बालक उनको 'तुम' के बजाय 'आप' क्यों कहा करते थे। वे बालकपनही में होनहार मालूम पड़ते थे और बड़े होने पर वे एक सुयोग्यव्यक्ति निकले। टूर्गेनफ़ ने बहुतही ठीक कहा है कि लेखक होनेके लिये जितने गुणोंकी आवश्यकता होनी चाहिये वे सब उनमें मौजूद थे। उनमें अहंकार लेश मात्र भी नहीं था। उन्हें इस बातकी पर्वाह नहीं थी कि

लोग मेरे बारेमें क्या सोचते हैं। किन्तु लेखकके योग्य जो उनमें गुण मौजूद थे वे उच्चकक्षाकी कला सम्बन्धी तथा परिमाणकी सूक्ष्म बुद्धि, सुस्वभाव, हँसोड़ पन, और बहुतही ऊंचे दर्जे की अनन्त कल्पना-शक्ति और उच्च कोटिके नैतिक विचार थे किन्तु ये सब गुण उनमें स्वभावही से थे—वे कुछ बनावटी या दिखाऊ नहीं थे। उनमें कल्पना शक्ति इतनी अधिक थी कि वे घंटों हंसी और भूतों की कहानियां कह सकते थे और वे उन्हें इस स्वाभाविक रीतिसे कहते थे कि सुननेवाले उन्हें सचही समझने लगते थे।

"जब मैं पांच वर्षका था, और मेरा दूसरा भाई डिमिट्री ६—७ वर्ष का था तब निकोलस ने यह प्रकाशित किया कि उनको एक ऐसा रहस्य मालूम है जिसके जानने से प्रत्येक व्यक्ति सुखी होजायगा। उसके जानने पर बीमारी, कष्ट, दूसरों के प्रति क्रोधादि मनोवेग आदि कुछ न रह जायंगे और लोगों में चीटियों ऐसा भ्रातृभाव फैल जायगा। कदाचित् उनका मतलब मोराबियन* भ्रातृत्व से होगा। जिनके बारेमें उन्होंने कहींकुछ पढ़ा या सुना होगा; किन्तु हम बच्चों के मस्तिष्कमें तोवह चीटियों ही का भ्रातृत्व था। मुझे अच्छी यादहै किइस शब्द "चींटी" ने हमको विशेष रूप से प्रसन्न किया था और हमें चींटियों के बिलों की याद आ जाती थी। हम लोगों ने "चींटियों के भ्रातृत्व" नामक एक खेल भी बना डाला था। हम लोग कुर्सियों के नीचे घुस जाते, अपने चारों ओर बकस रख लेते और छेदों को रूमालों से बन्दकर लेते और अंधेरे में

* रूसी भाषा में चींटी को Muravei मुरावी कहते हैं। मेराविया हंगरी के निकट एक देश है।

एक दूसरे से चिपटे हुए बैठे रहते थे। मुझे याद है कि उस समय मैं एक प्रकार के विशेष प्रेम और दयालुता का अनुभव मन ही मन करता था। और मुझे वह खेल बहुत पसन्द था।

"चीटियों के भ्रातृत्व" का रहस्य तो हमें बतला दिया गया; किन्तु वह महान् रहस्य—कि जीवन किस प्रकार सुखी किया जा सकता है, झगड़े क्रोधादि कैसे दूर किये जा सकते हैं और मनुष्य सदा के लिए किस प्रकार सुखी किया जा सकता है—यह रहस्य, वे कहाकरते थे कि उन्होंने एक हरी छड़ी पर लिखकर सड़क के किनारे पुराने जंगल से लगे खन्दक के पास गाड़ दिया था। मेरा शरीर कहीं न कहीं अवश्य ही गाड़ा जायगा अतएव मैं प्रार्थना करता हूं कि मेरे शरीर को मेरे भाई निकोलस की स्मृति में लोग वहीं गाड़ें।

"इसके सिवाय कहीं एक "फैनफैरन" पहाड़ी भी थी जहां कि वे हमको कुछ शर्त पूरी करने पर पहुंचा देने का वादा करते थे। वे शर्तें यह थीं—पहिली यह कि एक कोने में खड़े होना और सफ़ेद रीछ को कभी ध्यान में न लाना मुझे याद है कि मैं किस तरह कोने में खड़े होकर उस सफ़ेद रीछ को ध्यानमें न लाने का कठिन उद्योग करता था जो कि कभी सफल न होता था। दूसरी यह कि एक सीधी लकीर पर बिना ठोकर खाये चलना और तीसरी यह कि सालभर तक जीते मरे भूने खरगोश को न देखना—जो सहल था। अन्त में यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती कि इस रहस्य को कभी न खोलेंगे।

चीटियों के स्नेहमय भ्रातृत्व का आदर्श अब भी मेरे हृदय में वर्तमान है भेद इतना ही है कि अब वह आदर्श कुर्सियों के बीच में रूमाल से ढककर रहने का नहीं किन्तु विशाल

नील आभामय आकाश के नीचे रहकर सारी मनुष्य जाति को छाती लगाने का आदर्श है। तब मैं विश्वास करता था कि किसी स्थान पर एक हरी छड़ी है जिस पर वह भेद रहस्य लिखा है जिसके जानने से मनुष्य जाति के सब दुःख कष्टादि दूर हो जायँगे। उसी भांति अब भी मेरा विश्वास है कि इस आशय का कोई तत्व (सिद्धान्त) अवश्य ही कहीं न कहीं वर्तमान हैं और किसी दिन यह रहस्य मनुष्य जातिके सन्मुख खोलकर रख दिया जायगा और सारी प्रतिज्ञायें पूर्ण कर दी जायँगी।"

लिओ टाल्स्टाय के दो बड़े भाई और थे। एक का नाम डिमेडी और दूसरे का नाम सर्जिअस था। इनके बारे में महात्मा स्वयं लिखते हैं:—

"डिमेट्री को मैं साथी समझता था, निकोलस को मैं आदर की दृष्टि से देखता था किन्तु सर्जिअस का मैं पूजन करता था। उसकी बातोंकी नकल करना चाहता, उसे प्रेम करता और उस ऐसा ही बनना चाहता था। मैं उसके सुन्दर शरीरकीबड़ाई मन ही मन किया करता। मैं उसके गाने, चित्र-कारी, शौक़ीनी, और विशेष कर उसके निष्कपट अहंकार को मनहीमन सराहा करता। मैं अपने बारे में सदा सचेत रहता था और इस बात को जानने की सदा चेष्टा किया करता था कि दूसरे लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं। मैं अपने बारे में दूसरों के विचार सदा समझने को कोशिश करता था। कभी मेरे समझे विचार सही होते कभी ग़लत। और अपने बारे में दूसरों के विचार जानकर मुझे सदा दुःख होता था। कदा-चित् इसी कारण दूसरों में मैं इसको ठीक विपरीत अर्थात्

निष्कपट अहंकार पसन्द करता था। इसी कारणसे मैं सर्जिअस से विशेष प्रेम करता था। प्रेम शब्दका यहां ठीक उपयोग नहीं है। मैं निकोलस से तो प्रेम करता था किन्तु सर्जिअस में अपने लिये अलभ्य गुण देखकर मैं उसकी पूजा किया करता था। ऐसा जीवन मुझे सुन्दर मालूम पड़ता था किन्तु साथ ही वह रहस्यमय और अचिन्त्य जान पड़ता था; इस कारण उसकी आकर्षण शक्ति और भी बढ़ जाती थी।

दूसरा भाई डिमेट्री युवावस्था में बड़ा ही धार्मिक था। उसमें आत्मत्याग की मात्रा बहुत अधिक थी और अवश्य ही लिओ के जीवन पर उसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा होगा। इनके सिवाय एक बात का प्रभाव उनके जीवन पर और भी पड़ा। उनके वंश वाले ईसाई धर्म की ग्रीक शाखा के अनुयायी थे। इस धर्म में परिव्राजकों के प्रति बड़ा सम्मान दिखलाया जाता है। इनमें एक प्रकार के परिव्राजक यूरोडिवी कहलाते हैं। वे बहुधा उनके यहां आया करते थे। उनके बारे में वे लिखते हैं:—

"यूरोडिवी बहुधा मेरे मकान में आया करते थे। मेरे घरवाले उनका बड़ा आदर करते थे और उन्होंने मुझे उनका आदर करना सिखलाया था। इसके लिये मैं उनका बड़ा कृतज्ञ हूं। यदि यह मान भी लिया जाय कि उनमें दम्भी और पाखण्डी लोग भी होते हैं और उनके जीवन में जब कभी नर्बलता भी आजाती है तथा जब कभी उनकी नियत भी डिग जाती है, तथापि असंभव होने पर भी उनके जीवनका उद्देश्य महान होता है। मुझे यह जानकर हर्ष होता है कि बाल्यावस्था ही से मैं अज्ञान में उद्देश्य की महत्ता का आदर

करना सीखने लगा था। उनमें मार्क्स आरिलस का यह बचन बहुत प्रचलित है कि अपने सुखी जीवन को तुच्छ दृष्टि से देखना ही संसार में सर्वोच्च वस्तु है। अपने को बड़े बनाने की लालसा मनुष्य में इतनी अधिक और अवश्यम्भावी होती है तथा मनुष्य के किये सभी अच्छे कामों में वह इतनी मिली रहती है कि हृदय में उन लोगों के प्रति सहसा सहानुभूति जाग उठती है जो लोगों की प्रशंसा की अपेक्षा न कर उनमें अपने प्रति घृणा उत्पन्न करते हैं।"

इन सब बातों का प्रभाव महात्मा के जीवनपर भरपूर पड़ा। बाल्यावस्थामें इस प्रकारके अनोखे, आकर्षक, कवित्वपूर्ण और दार्शनिक समाजमें रहकर वे कभी उस अवस्थाको नहीं भूले। अपने जीवन चरित्रमें वे एक जगह अपनी बाल्यावस्थाको यादकर लिखते हैं:—"सुखी-सुखमय-बाल्यावस्था के दिन बीतगए! मैं कैसे उनको भूल सकताहूं। मैं सदा उन्हें प्रेमके साथ याद करताहूं, यह स्मृतियां मेरी आत्माको प्रसन्न करतीहैं, उसको उच्च करतीहैं और वे मेरे सुखका सबसे महान कारण हैं।"

इसी प्रकार उनकी बाल्यावस्था बीतनेलगी। अब उनके तथा उनके भाइयोंकी शिक्षापर अधिक ध्यान दिया जानेलगा। निकोलस अब उच्च शिक्षा पाने के योग्य होगए थे अतएव उनको दूसरी जगह लेजाना आवश्यक था। तदनुसार सारा परिवार मास्को चला गया।

इस समय उनके परिवारमें तीन मृत्यु हुई पहले तो महात्मा टाल्स्टाय के पिता का देहान्त हुआ। इसीके अठारह महीने बाद उनकी दादीका और अन्तमें उनकी चाची—बैरोनस

ओस्टन ऐकन का देहान्त होगया जो बालकों का निरीक्षण करती थीं तबसे बालकों का निरीक्षण एक दूसरी चाची पैलगी यूशकफ़ करनेलगीं; वे केज़ाँ में रहती थीं और वहीं वे सब बालकों को ले गईं। यह बात सन् १८४१ ई० की है। लियो टाल्स्टाय की अवस्था उस समय कुल तेरह वर्षकी थी। उस समय टाल्स्टाय में दिखावट और अभिमान की मात्रा कुछ अधिक थी। इससे उनके मन में बड़ी अशान्ति रहती थी। टाल्स्टाय को अपनेमें से इन अवगुणोंको हटानेके लिए कठिन परिश्रम और उद्योग करना पड़ा था। उन्हें अपने शरीर की सुन्दरता का बड़ा ध्यान रहता था और जब वे शीशे में अपना मुंह देखते और यह पाते कि वे सुन्दर नहीं हैं—तब उनको बड़ा क्षोभ होता था। इसके सिवाय उस समय उनमें कुछ बालक—सुलभ संकोच भी अधिक था जिसके कारण भी उनको अधिक कष्ट सहना पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि वे आपही आप प्रत्येक बात पर विचार करने लगे। उन्हें विचार करने और तर्क तथा वस्तुओं की जांच करने की धुन समाई। अतएव परिणाम यह हुआ कि उनके हृदय में सन्देह जनक नास्तिक भावों का उदय हुआ।

इसके कुछ दिनों बाद उन्होंने केज़ाँके विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। उनके तीन बड़े भाई वहां पहिले हीसे शिक्षा पा रहे थे। पहिले उन्होंने पूर्वीय भाषाओं का अध्ययन आरम्भ किया किन्तु साल के अन्त में जब वे परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुए तब उन्होंने दूसरे साल कानून का कोर्स ले लिया। यद्यपि यहां उन्होंने कुछ उन्नति की किन्तु अन्तमें उनका मन उसमें भी न लगा। उनका स्वतन्त्र विचारपूर्ण और भावुक

स्वभाव उस समय की अध्ययन प्रणाली से सन्तुष्ट नहीं हो सकता था। किन्तु उनके सामाजिक जीवन में उस समय बड़ा परिवर्त्तन हुआ था। उनकी अभिभावुका युशकाफ़ केजां सर्वोच्च समाज में आदर की दृष्टि से देखी जाती थीं। अतएव लिओ टाल्स्टाय का जीवन भी उस समाज के सुखों में डूबने उतराने लगा। 'बालनाच, थियेटर इत्यादि में उनके जाड़े बीतते जिससे उनके अध्ययन को बड़ी हानि पहुंचती। अतएव वही हुआ जो ऐसी अवस्था में हो सकता था उनको अध्ययनमें सफलता प्राप्त नहीं हुई। इन सब बातों में पड़कर वे बहुधा विद्यालय के उन व्याख्यानों से ग़ायब हो जाया करते थे जिनसे उन्हें अरुचि होती। अवश्यही उनके स्वभाव और योग्यता का व्यक्ति कभी भी विद्यालय के नीरस शुष्क और आकर्षणहीन व्याख्यानोंसे सहानुभूति नहीं रख सकता था। शिक्षा प्रणाली में जो सब से बड़ा दोष हो सकता है वह यही है कि उसमें विद्यार्थी को उन विषयों को ज़बर्दस्ती पढ़ना पड़े जिसमें उसकी रत्ती भर भी रुचि न हो। परिणाम यह होता है कि उसका परिश्रम, शक्ति और समय व्यर्थही एक ऐसे विषयके साथ सिर मारनेमें जाता है जिसका वह कुछ भी उपयोग नहीं कर सकता और जिसे वह परीक्षा के दूसरे दिनही भुला देने में आनन्द समझता है। टालस्टाय भी इस नियम से परे नहीं थे—किन्तु वे स्वतन्त्र विचार के होने के कारण (तथा नाच तमाशों में अधिक लगे रहने के कारण) ऐसे अरुचिकर व्याख्यानोंसे उड़जाया करते थे। एक बार तो उस समय की विचित्र विश्वविद्यालय शासन प्रणाली के अनुसार वे विश्व-विद्यालय की जेल में इसी अपराध के लिये ठूंस दिये गये थे।

किन्तु तो भी उनपर इस सबका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। परीक्षामें वे सदा कम नम्बर पाते रहे। किन्तु उनमें यह बात भी थी कि जहां कोई विषय उनकी रुचि के अनुकूल होता वहां वे हृदय से उसके अध्ययन में लगजाते और उसको अच्छी तरह से मनन कर डालते।

उसी समय से टाल्सटाय ने एक डायरी लिखना आरंभ कर दिया था। उससे मालूम पड़ता है कि वे अपने आस पास की वस्तुओं को बड़े ध्यानपूर्वक देखा करते थे और उसी अवस्था से उनमें दार्शनिक विचारों का अभ्युदय होना आरम्भ हो गया था। यही नहीं, उससे यह भी मालूम पड़ता है कि उनके नैतिक विचार भी उस अवस्था में बहुत बढ़ गये थे।

डायरी में एक जगह पर उन्होंने लिखा है:—

मार्च १८४७—

"यद्यपि मैंने बहुत परिवर्तन कर डाला है किन्तु मैं अपने अध्ययन में जितनी उन्नति करना चाहता हूं उतनी अभी तक नहीं कर सका। मैं जो कुछ कार्य करने का विचार करता हूं, उसे मैं करता भी हूं तो अच्छी तरह नहीं करता। मैं अपनी स्मर्ण शक्ति से ठीक ठीक कार्य नहीं लरहा। इस कारण मैं कुछ नियम बनाता हूं और मुझे विश्वास है कि यदि मैं उनके अनुसार चलूंगा तो मुझे बड़ा लाभ होगा।

१—जो कुछ कार्य करने का तुम निश्चय करो, उसे अवश्यही पूरा करो।

२—जो कुछ तुम करो, अच्छी तरह करो।

"३—यदि तुम कोई बात भूल गए हो तो उसे पुस्तक में न देखो किन्तु उसे स्मर्ण करने का उद्योग करो।

४—अपने मस्तिष्क से जितना अधिक काम हो सके लिया करो।

५—ज़ोर से पढ़ा और सोचा करो।

६—यदि लोग तुम्हारे पढ़ने में विघ्न करें तो उनसे यह कहने में संकोच न करो। पहिले उनको इशारे से समझाओ यदि इस पर भी वे न समझें तो क्षमा प्रार्थना पूर्वक उनसे स्पष्ट कह दो।"

एक जगह वे लिखते हैं:—

"समाज संसारका एक भाग है। विचार (बुद्धि) संसार के अनुसार होना चाहिये। जिससे कि उसके नियम जानकर वह समाजसे स्वतन्त्र होजाय जोकि वास्तवमें संसार का एक अंग मात्र है।"

दर्शन के बारेमें एक जगह लिखा है;—

'मनुष्यमें वासनाएं हैं। अर्थात् वह कार्यपटु है। उसकी कार्यपटुता किस ओर लगी है? किन किन उपायोंसे यह कार्य बहुत स्वाधीन किया जा सकता है? दर्शनका यही सच्चा लक्ष्य है। अर्थात् दर्शन जीवन का विज्ञान है। उन्होंने अपने उपन्यास 'युवावस्था' में नायकके मुंहसे वे भाव कहलाये हैं जो अवश्य ही युवावस्थामें उनके भाव रहे होंगे।

चन्द्रमा आकाश में चढ़ने लगा और ज्यों ज्यों वह ऊंचा चढ़ता था त्यों त्यों तालाब की चमक, पास आते हुये शब्द के समान बढ़ती जाती थी। छाया पल पल पर अधिक काली होती जाती थी और प्रकाश पल पल पर अधिक स्वच्छ होता जाता था। और यह सब देखकर और इन पर विचार कर मेरे मन में मानो कोई कहने लगा कि वह अनाच्छादित बाहु

होने और गाढ़ालिंगन के पश्चात् भी बिल्कुल ही सुखी नहीं है और उसके लिये मेरा प्रेम अभी सम्पूर्णता पर नहीं पहुंचा है। जितना ही अधिक मैं ऊंचे पूर्ण चन्द्रमा की ओर निहारता था, मुझे सच्चा सौन्दर्य और भलापन उतने ही ऊंचे पर और उतना ही अधिक पवित्र मालूम पड़ता था* जो सब सौन्दर्य और अच्छाई का कारण है। और इस विचार के कारण असन्तोष किन्तु हार्दिक विचारों के सूचक आंसुओं से मेरी आँखें डबडबा आईं।

"और तबभी मैं अकेला ही था। और मुझे मालूम पड़ने लगा कि भेद भरी प्रकृति तथा लुभावनी चन्द्रमा की चमकती पीली थाली नीलाकाश में निश्चल होकर अनिश्चित स्थान पर स्थिति है—तथापि उसका प्रकाश सब जगह वर्तमान है और अनन्त आकाश उसकी किरणों से भरा हुआ है। और मैं—एक तुच्छ कीड़ा, जो मानवी कामनाओंके कारण अपवित्र हो चुका हूँ, किन्तु जिसमें प्रेम करने की अनन्त-शक्ति वर्त्तमान है—वह मैं, प्रकृति और चन्द्रमा मुझे ऐसा बोध हुआ कि—मानों एक ही हैं।"

ये टाल्स्टाय के युवावस्था के विचार थे, अतएव उन्हें विश्वविद्यालय की शुष्क पढ़ाई पसन्द न आई। उसी समय उनके बड़े भाई ने अपना अध्ययन समाप्त किया और टाल्स्टाय भी उनके साथ यासनाया पालयाना लौट गए। किन्तु टाल्स्टाय घर बहुत दिनों नहीं रह सके उस समय रूस में किसानों के लिए एक तरह की गुलामी प्रचलित थी। उस गुलामी की क्रूरता को उनकी आत्मा कभी सहन नहीं

* वह सौन्दर्य मुझे उसके निकट मालूम पड़ता था।

कर सकती थी। वे दासों के लिए उस समय कुछ कर भी नहीं सकते थे। उन्होंने ऐसे उद्योग की विफलता एक छोटे से उपन्यास "एक ज़मींदार का एक सबेरा" में दिखलाई है। उस समय सुख पाने की इच्छा से वे पेट्रोग्रेड (सेन्टपीटर्सबर्ग) गए। किन्तु उनका जीवन उस समय बिल्कुल अस्थिर था। उस समय उनके लिए मानसिक शांति का पाना आकाश कुसुम की भाँति असम्भव था। वहाँ जाकर उनका जीवन तत्कालीन बड़े आदमियों की भाँति बिल्कुल बे नियम होगया। वे ताश खेलते, कर्ज़ काढ़ते, तथा ऐसे ही बेसिर पैर के कामों में अपना समय नष्ट करते थे। उनका चित्त भी स्थिर नहीं था। कभी वे विदेश घूमने की इच्छा करते, कभी विश्वविद्यालय की परीक्षा देने की तैयारी करते और कभी सेना में भर्ती होने का विचार करते। उस समय टाल्स्टाय युवावस्था की अनिश्चित, उत्तुंग और तेज़ धार में बहे जारहे थे, किन्तु उसमें आशा के लक्षण केवल यही थे कि वे अपनी अबतक अवस्था को अच्छी तरह समझते थे। अपनी डायरी में वे एक जगह लिखते हैं:—

"यद्यपि मैं बिल्कुल ही गिर नहीं गया तथापि पशु के समान अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूं। मेरा अध्ययन बिल्कुल बन्द है और मेरी आध्यात्मिक दशा बहुत गिरी हुई है।"

मनुष्य चरित्र कितना भेद भरा और गम्भीर है। टाल्स्टाय के समान व्यक्ति भी इतना गहरा नीचे जा सक्ता है। जिस भव-सिन्धु के भँवर में गजराज तक गोता खा जाते हैं उसमें यदि कोई दुर्बल मनुष्य डूब जाय तो कौन से आश्चर्य की बात है।

किन्तु जुआ, भ्रष्ट जीवन और विकार आदि के तूफ़ान में टाल्स्टाय के हृदय में सहसा वैराग्य उत्पन्न हो गया। और इतने नीचे गिर कर उन्होंने उतना ही ऊपर उठना आरम्भ किया। उनकी कल्पना को काफ़ी शिक्षा मिल चुकी थी और अब उन्होंने अपनी शक्ति साहित्य की ओर लगायी।

तृतीय अध्याय

युवावस्था और फ़ौज में भरती होना

यह नहीं कहा जा सकता कि यदि उस समय टाल्स्टाय के निवास स्थान में परिवर्तन न होता तो टाल्स्टाय का जीवन नैतिक दृष्टि से कितना हीन हो जाता। किन्तु एक परिवर्तन ने उनके जीवन का वेग सहसा दूसरी ओर घुमा दिया। हम पहिले कह आये हैं कि उनके बड़े भाई निकोलस ने केज़ाँ विश्वविद्यालय में अपना अध्ययन समाप्त किया था। इसके बाद उन्होंने सेना में प्रवेश किया। वे रूस के सुदूरवर्ती दक्षिणी प्रान्त काकेशसमें भेजे गये और तोपखाने के विभागमें रक्खे गए। सन् १८५१ के अप्रैल मास में वे कुछ दिनों की छुट्टी लेकर घर आये।

घर पर आकर उन्होंने देखा कि टाल्स्टाय का नैतिक जीवन दिनोंदिन हीन होता जा रहा है और यदि उन्हें शीघ्र ही उस जीवन से अलग न किया जायगा तो वे सदा के लिए पथ-भ्रष्ट हो जायंगे। अतएव उन्होंने टाल्स्टाय से अपने साथ चलने के लिये कहा। टाल्स्टाय तो ऐसा कोई अवसर ताक

ही रहे थे, उन्होंने इस प्रस्ताव को तत्काल स्वीकार कर लिया। तदनुसार उसी वर्ष की वसन्त ऋतु में दोनों भाइयों ने काकेशस की ओर प्रस्थान कर दिया।

रास्ते में वे केज़ाँ में ठहरे। वहाँ एक विचित्र घटना हो गयी। यहाँ वे ज़िनेडी मोलोस्टोफ़ नामक कुमारी के प्रेम में पड़ गये। अतएव जब वे अपनी यात्रा में आगे बढ़े तब उनका हृदय अत्यंत प्रफुल्लित था।

उनके बड़े भाई पहिले किज़लियर नामक स्थान में थे। किन्तु कुछ दिनों बाद वह दस्ता, जिसमें कि वे थे, स्टारी-युर्ट नामक स्थान को बदल दिया गया और उसके साथ ही निकोलसको भी वहाँ जाना पड़ा। टाल्स्टाय भी अपने भाई के साथ वहाँ गए। इस स्थान पर कुछ गर्म खानिज जल के झरने थे, और वहां पर लोग जल वायु परिवर्तनार्थ जाया करते थे। यह स्थान बड़ा ही रमणीक था। टाल्स्टाय ने अपनी बुआ टैशियाना को एक पत्र में इस पर्वत का वर्णन करते हुए लिखा है:—

"यह पर्वत बड़ी बड़ी चट्टानों से बना है। कहीं कहीं तो इन चट्टानों ने एक दूसरे से मिलकर गुफ़ाएं बनाई हैं और कहीं वे ऊंचाई पर लटक रही हैं। स्थान स्थान पर गर्म जल के झरने कलकल शब्द करते हुए पर्वत पर से नीचे दौड़ते चले आ रहे हैं। इस खौलते हुये जलसे निकलते सफ़ेद वाष्प के कारण चट्टानों का ऊपरी भाग, विशेष कर प्रातःकाल में छिप सा जाता है। इन झरनों का जल इतना गर्म है कि उसमें तीन ही मिनट में अण्डा अच्छी तरह पक जाता है। घाटी में झरने के ऊपर तीन पनचक्कियाँ बड़ी विचित्र किन्तु

चित्ताकर्षक रीति से बनी हैं। चक्कियों के पास दिन भर तातारी स्त्रियाँ कपड़े धोती हुई दिखलाई पड़ती हैं। वे कपड़ों को पैर से धोती हैं। चारों ओर फुर्ती दिखलाई पड़ती है। स्त्रियाँ प्रायः सुन्दर और सुडौल होती हैं। पूर्वीय स्त्रियों का पहिनावा चाहे कम मूल्य का ही क्यों न हो किन्तु बड़ा ही भव्य होता है। प्रकृति का स्वाभाविक सौन्दर्य, स्त्रियों के सुंदर झुण्ड से मिलकर एक बड़ा ही सुन्दर दृश्य उपस्थित कर देता है और मैं बहुधा घण्टों खड़े होकर इस दृश्य को निहारा करता हूं।"

अपने उपन्यास "कज़्ज़ाक" में उन्होंने पहाड़ का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है:—

"प्रातःकाल के समय आकाश में बिलकुल ही बादल न थे। उसे सहसा मालूम पड़ा कि थोड़ी ही दूर पर कुछ कुछ चमकीली श्वेत वस्तु उपस्थित है जिसके नुकीले शिखर सुदूरवर्ती आकाश से लगे जा रहे हैं। जब उसने यह जाना कि उसके और पहाड़ों के बीच कितना अन्तर है, तथा आकाश और पहाड़ के मध्य कितना अन्तर है, जब उसने पर्वत की विशालता को समझा, जब उसने उनके अनन्त सौन्दर्य को देखा तब वह स्तंभित रह गया। उसे ऐसा मालूम पड़ा कि वह सपना देख रहा है। वह केवल असत्य चित्र है। उसने मानों उस तंद्रा से अपने आपको जगाने के लिये अपने शरीर को हिलाया किन्तु फिर भी वे पर्वत जहां के तहां निश्चल भाव से खड़े रहे।

उसने कोचवान से पूछा—"यह सामने क्या है? यह सामने क्या है?

नोगी ने बड़ी लापरवाही से उत्तर दिया–"यह पहाड़ है"।

जान ने कहा–"मैं भी उन्हें इतनी देर से देख रहा हूं। ये कितने सुन्दर हैं! देश में वे इसके वर्णन पर विश्वास न करेंगे।

ज्यों ज्यों "ट्रोहका" समथल धरती पर शीघ्रता से आगे बढ़ता जाता था त्यों त्यों ऐसा मालूम पड़ता था कि पर्वत क्षितिज से लग कर दौड़ रहे हैं। प्रभात कालीन सूर्य में उनकी गुलाबी चोटियाँ चमकने लगीं, पहिले तो "ओलेनित" को पहाड़ देखकर केवल आश्चर्य हुआ, बाद को उसे उन्हें देखकर प्रसन्नता हुई। किन्तु बाद में जब उसने कुछ देर तक मैदान से उठे हुए और हिम के कारण स्वेत शिखरों से मण्डित, उन पर्वतों को निहारा तब धीरे धीरे उसे उनका सौन्दर्य अनुभव होने लगा। उस समय से जो कुछ उसने विचार किया, जो कुछ उसने देखा, जो कुछ उसने अनुभव किया, वह सब इन पर्वतों की गम्भीर सुन्दरता के बारे ही में था। उस समय से ही उसके हृदय से मास्को और काकेशस की कुल स्मृति तथा हृदय के परिताप सदा के लिए चले गए। उसके हृदय में मानो किसी गम्भीर शब्द ने कहा कि अब यह आरम्भ हुआ है। टेरक की दूरवर्ती लकीर, गांव और मनुष्य सभी को वह गम्भीर दृष्टि से देखने लगा। उसने ऊपर आँख उठा कर आकाश की ओर देखा और उसे पहाड़ याद आगए। उसने अपने आपको देखा, अपने साथी जान पर निगाह डाली, किन्तु फिर वे ही पर्वत मस्तिष्क में घूम गए। टेरक के उस पार एक गांव से धुंआ उठ रहा था–किन्तु उसके बाद भी क्या था? पर्वत। उसके चारों ओर पर्वत ही पर्वत दृष्टिगोचर होते थे।"

जिस प्रकार शरीर के ऊपर जलवायु के परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार आत्मा के ऊपर भी प्रकृति के सौन्दर्य, गम्भीरता और मनोहरता का प्रभाव पड़ता है। टालस्टाय के चारों ही ओर प्रकृति का अतुलनीय सौन्दर्य था, चारोंही ओर पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले सीधे साधे और भोले भाले पहाड़ी मनुष्य और कज़्ज़ाक थे। इन सब के कारण उनके हृदय में धार्मिक प्रवृत्ति का जागरण आरम्भ हुआ। उनकी कल्पना-शक्ति प्रखर हो गयी, और उनमें कोविद के वे लक्षण दिखालाई देने लगे जो आगे चल कर संसार को इतने लाभदायक हुए। उनमें उस समय कितनी धार्मिक प्रवृत्ति जागृति हो उठी थी उसका परिचय उनकी डायरी के इस अवतरण से मिलेगा:—

"कल रात को मैं कठिनता से सो सका। अपनी डायरी में कुछ लिखने के बाद मैं प्रार्थना करने लगा, उस समय मुझे जो आनन्द अनुभूत हुआ उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। मैं 'हमारे पिता' 'कुमारी मेरी' 'त्रिरुप के प्रति दया का द्वार' "रक्षक देवता के प्रति" नामक प्रार्थनाओं को कहने लगा। और इसके बाद भी मैं प्रार्थना करता रहा। यदि प्रार्थना का मतलब धन्यवाद देना या किसी वस्तु के लिये याचना करना है-तो मैंने प्रार्थना नहीं की। मेरे हृदय में किसी उत्तम और उच्च वस्तु की अभिलाषा थी; किन्तु वह वस्तु कौन सी थी इसको मैं व्यक्त नहीं कर सकता। मेरी आन्तरिक अभिलाषा उस सर्वव्यापी आत्मा में मिल जाने की थी, मैं उससे अपने पापों की क्षमा प्रार्थना कर रहा था। किन्तु नहीं, मैं इसके लिए उत्सुक नहीं था, क्योंकि उन आनन्ददायक

क्षणों को मुझसे व्यक्ति को देना ही यह सूचित करता था कि उन्होंने मेरे अपराध क्षमा कर दिए हैं। मैंने प्रार्थना की और उसी समय यह भी अनुभव किया कि मुझे किसी भी वस्तु की आकांक्षा नहीं है। मुझे यह बोध हुआ कि न तो मुझ में मांगने की ही शक्ति थी और न मुझे मांगने का उपाय ही मालूम था। मैंने उसे धन्यवाद दिया—किन्तु मेरा धन्यवाद शब्दों और विचार में नहीं था। भय की प्रत्येक भावना मेरे हृदय से भाग गयी थी। इस भावना में भक्ति, विश्वास और आशा इस तरह मिली हुई थी कि मैं उनको अलग नहीं कर सकता था। नहीं, कल मैंने जो भावनाएं अनुभूत कीं वह परमात्मा की भक्ति थी। वह सर्वोच्च श्रेणी का प्रेम था, उसमें संसार की सभी अच्छाई मिली थी और संसार की कोई भी बुराई उसमें न थी। उस समय जीवन के क्षणिक और अपवित्र भाग का ध्यान आते ही मेरा हृदय काँप उठा। मेरी समझ में यह नहीं आता था कि उस नष्ट जीवन ने मुझे क्योंकर आकर्षित कर लिया था। मैंने परमात्मा से कितने शुद्ध हृदय से अपनी शरण में लेने की प्रार्थना की थी। मुझे अपने स्थूल शरीर का ध्यान न रहा। नहीं, नहीं, इस स्थूल शरीर ने फिर अपना महत्व जमाना आरम्भ किया और एक घंटे से भी कम में पाप, अहंकार और जीवन के निस्सार पदार्थों की ध्वनि मेरे कानों में गूँजने लगी। मुझे मालूम था कि यह ध्वनि कहाँ से आई थी। मुझे मालूम था कि इसने मेरे मानसिक आनन्द को नष्ट कर दिया था। मैंने उसके विरुद्ध उपाय किया—किन्तु मेरी हार हुई।

"इन्हीं विचारों की उधेड़ बुन में सो गया। स्वप्न में मुझे

यश और श्री दीखने लगी। किन्तु यह मेरा अपराध नहीं था- मैं इसमें निरुपाय था।"

"चिरन्तन सुख इस पृथ्वी पर असम्भव है। कष्ट आवश्यक है। क्यों? इसका उत्तर मैं नहीं दे सकता। और मैं यह कहने का साहस कैसे कर सकता हूं कि 'मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता'? यह मैंने कैसे कहा था कि विधि-गति संसार को विदित है। किन्तु विधि ही से विचार उत्पन्न हुआ है—और विचार तत्व को समझने की चेष्टा करता है। विचार तो ज्ञान की गहराई में समा गया है और भावना 'परमात्मा कहीं अप्रसन्न न हो जाय' इससे डर रही है। मैं उसको उन क्षणों के लिए धन्यवाद देता हूं जिनमें उसने मुझे मेरी हीनता और बड़ाई दिखलादी है। मैं प्रार्थना करना चाहता हूं किन्तु मुझे प्रार्थना करने की रीति नहीं मालूम है। मैं समझना चाहता हूं किन्तु समझ नहीं सकता। मैं अपने आपको तुम्हारी इच्छा पर छोड़ देता हूं"।

"मैंने यह सब क्यों लिखा है? जब मैं अपनी भावनाओं को प्रगट कर देता हूं तो वे कितनी निस्सार, कितनी भद्दी और कितनी निरर्थक मालूम पड़ती हैं" किन्तु तो भी मुझे आश्चर्य होता है कि वे इतनी ऊंची कक्षा की थीं।"

'कज़ाक' नामक उपन्यास में उन्होंने उसके नायक के मुंह से जीवन के अर्थ पर बड़े ही मनोरंजक विचार निकलवाए हैं:—

'एकाएक उसे मालूम हुआ कि सारा संसार उसके सन्मुख खुल गया है। वह कहने लगा दूसरों के लिये जीनाही सुख है। और यह बिलकुल स्पष्ट है। मनुष्य में सुख की इच्छा जन्म से ही मौजूद है। इससे यह प्रमाणित होता है कि

यह इच्छा न्याययुक्त है। इस इच्छा को स्वार्थ में सने हुये उपायों से पूरी करना भी न्याययुक्त नहीं है। सम्भव है लोग इच्छा को धन, यश, शरीर के सुखों, सांसारिक प्रेम (मोह) द्वारा पूर्ण करना चाहें, किन्तु यह भी सम्भव है कि जीवन में ऐसी अवस्था आ उपस्थित हो कि इन साधनों से वह सुख की इच्छा पूरी न हो सके। अतएव ये वासनाएँ न्याययुक्त नहीं हैं, किन्तु सुख की इच्छा इस कारण अन्याययुक्त है। कौनसी ऐसी कामनाएँ हैं जो मनुष्य की सांसारिक अवस्था का ध्यान न करके पूरी होती हैं? वे दो कामनाएँ हैं:—"प्रेम और आत्मत्याग।"

अपने भाई के साथ रहते रहते टाल्स्टाय की सेना में भर्ती होने की इच्छा बलवती हो उठी। अतएव वे टिफ़्लिस के सैनिक विद्यालय में भर्ती हुए। परीक्षा पास कर लेने पर वे २० वें तोपख़ाने की चौथी बैटरी में रखे गये।

टिफ़्लिस ही में उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास 'बाल्यावस्था' को लिखना आरम्भ किया। जुलाई में उसे समाप्त कर उन्होंने उसे पैट्रोग्रैड (सेन्टपीटर्सबर्ग) के तत्कालीन मुख्य मासिक पत्र 'सोव्रेमैनिक' में छपने के लिए भेजा। उसका सम्पादन उस समय एन. नैक्रासफ़ करते थे जो अपने समय के एक प्रसिद्ध कवि थे। उस पत्र में रूस के तत्कालीन सभी मुख्य २ लेखक लेख भेजा करते थे। कवि नैक्रासफ़ ने टाल्स्टाय के उपन्यास को बहुत पसन्द किया और उसे अपने पत्र में छाप दिया। टाल्स्टाय के जीवन में यह घटना विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि इस उपन्यास के छपने पर उन्हें यह दृढ़ विश्वास होगया कि उनके जीवन का मुख्य क्षेत्र

साहित्य होगा। उसी समय उन्होंने अपनी डायरी में एक जगह लिखा था कि "मेरे हृदय में एक आवाज़ रह रहकर कहती है कि तुम औरों की तरह साधारण व्यक्ति बने रहने के लिए उत्पन्न नहीं हुए हो।"

उसी समय से टाल्सटाय के वे विचार–जिनका उन्होंने संसार में प्रचार किया—उन पर दृढ़तापूर्वक अपना अधिकार जमाने लगे। अपनी डायरी में उन्होंने लिखा है:—"जो मनुष्य केवल अपने सुख के लिए उद्योग करता है, बुरा है। वह मनुष्य जो अपने बारे में दूसरों की सम्मति की परवाह करता है कमज़ोर है; जो दूसरों को सुख पहुंचाने का उपाय करता है पुण्यात्मा है; जिसका ध्रुव परमात्मा है, बड़ा है।

'न्याय करना कोई बड़ा पुण्य नहीं है क्यों कि यह तो सब-का कर्तव्य है। (न्याय का न करना पाप है क्योंकि न्याय करना मनुष्य का धर्म है) न्याय करने से उच्च व्यक्ति सम्पूर्णता पर पहुंचने का उद्योग करता है। अतएव निम्न श्रेणी के विचार बुरे हैं।

अवश्य ही इन विचारों का मनुष्य काकेशस पहाड़ में एक तोपखाने में पड़े रहने के लिए नहीं उत्पन्न किया गया था। यह केवल विधि की विडम्बना ही थी और मनुष्य जीवन की उन अनेक परस्पर बिपरीत बातों का एक नमूना थी कि युद्ध और बल प्रयोग का घोर विरोधी युद्ध में भाग ले। युद्ध के बारे में टालस्टाय के जो विचार आगे चलकर बने थे सम्भव था कि वे बिना युद्ध में गए न बन पाते। जो हो, काकेशस में पार्वतीय सौन्दर्य और प्रकृति का शृंगार देखते, अपने विचारों में गोते लगाते तोपखाने की आकर्षण हीन ड्यूटी बजाते कदाचित् टाल-

स्टाय का चित्त ऊब गया। उन्होंने अपना इस्तीफ़ा भेज दिया। किन्तु "मूंड़ मुंड़ाते ही ओले पड़े" उनके इस्तीफ़े की स्वीकृत भी न आने पाई थी कि अन्तिम शताब्दी का प्रसिद्ध क्रीमियन युद्ध छिड़ गया। टालस्टाय की स्वाभाविक वीरता ने अपना प्रभाव दिखलाया। उन्होंने तत्काल अपने कुछ प्रभावशाली सम्बन्धियों द्वारा उसे वापिस करा लिया और युद्ध स्थल में जाने की इच्छा प्रगट की। तदनुसार वे डैन्यूब सेना के प्रधान सेनापति प्रिन्स गोर्चेकफ़ के स्टाफ़ में, जो स्वयं उनके एक सम्बन्धी थे, भेज दिये गए।

इस समय उन्होंने सेना की उच्च परीक्षा पास कर ली थी अतएव वे यहां एक अफ़सर की हैसियत से भेजे गए। डैन्यूब की सेना के साथ उन्होंने सिलिस्ट्रिया के उड़ाने में योग दिया जब रूसी सेना पीछे हटी तब वे भी उसके साथ हटे। किन्तु इस पीछे हटने में उनका मन न लगा और उनकी इच्छा लड़ाई में योग देने की थी। अतएव उन्होंने प्रार्थना की कि वे सिवास्टोपल के क़िले में भेज दिए जायें। उनकी प्रार्थना मंजूर हुई और वे नवम्बर १८५४ में सिवास्टोपल के इतिहास प्रसिद्ध दुर्ग में पहुंचाए गए।

इतिहासज्ञ पाठक जानते होंगे कि क्रीमियन युद्ध में रूसियों को अंग्रेज़ों और फ्राँसीसियों का सामना करना पड़ा था। जब रूसी आलमा के युद्ध में हारे तब वे सिवास्टोपोल पर जाडटे। अंग्रेज़ और फ़रासीसियों ने इस दुर्ग को घेर लिया। रूसी बड़ी वीरता के साथ इस दुर्ग को बारह महीनों से भी अधिक दृढ़ता पूर्वक बचाए रहे। रूसियों ने जिस दृढ़ता से इस दुर्ग की रक्षा की वह इतिहास प्रसिद्ध है। इस दुर्ग में जो सैनिक बन्द

होगये थे उन्होंने बड़ीही वीरता के कार्य किये हैं। इसी सिवा-स्टोपल दुर्ग में हमारे चरित्र नायक पहुंचे। वहां पहुंच कर उनमें वह देशप्रेम और उत्साह उत्पन्न हुआ जिसके लिये वे सैनिक इतिहास प्रसिद्ध हैं। उस समय उन्होंने अपने भाई को जो पत्र लिखा था उसमें से एक अंश यहाँ उद्धृत करते हैं जिससे उनके भाव विदित होंगे। सेना का उत्साह अवर्णनीय है प्राचीन ग्रीस में भी इतनी वीरता नहीं थी। कार्निलफ जब सेना में चक्कर लगा रहे थे तब उन्होंने "वीरो तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा रहे' कहने के बजाय वीरों हमें मरना होगा? क्या तुम मरोगे?" यह विचित्र वाक्य कहा। और सिपाहियों ने उत्साह के साथ चिल्लाकर उत्तर दिया—"श्रीमान् हम मरने के लिये कटिबद्ध हैं।" और यह बनावटी बात नहीं थी। प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे से यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि जो कुछ उन्होंने कहा, वे वही करेंगे और २२००० सिपाहियों ने अपने इस मृत्यु के व्रत को पूरा किया है।

यद्यपि टालस्टाय ने किसी महत्व पूर्ण मोर्चे में भाग नहीं लिया तथापि उनका जीवन सदा बड़े ख़तरे में रहता था। चौथे बुर्ज के सबसे भयङ्कर स्थान पर वे रक्खे गये थे किन्तु उन्होंने कभी भय से भय नहीं किया और सदा अदम्य साहस और उत्साह से अपना कर्तव्य पालन करते रहे।

भोजनालय में वे अपने मज़ाक और हँसोड़पन से सदा सबको प्रसन्न रखते थे; उन्होंने उन्हीं दिनों वह प्रसिद्ध गीत-बनाया था जो पीछेइतना प्रसिद्ध हुआ। इस गीत में कितने ही अफ़सरों का मज़ाक उड़ाया गया था। सिपाहियों ने इसे इतना

पसन्द किया कि शीघ्र उन्होंने इसे कण्ठ कर लिया और बहुधा यह प्रसिद्ध गीत सिवास्टोपल के दुर्ग में जगह २ सुनाई पड़ता था।

टाल्स्टाय इस भीषण युद्ध में प्रवृत थे। वे नित्यही सैकड़ों को मरे हुए, मरते हुए और असह्य यंत्रणा भोगते हुए देखते थे। युद्ध के दृष्य कितने भयानक होते हैं। जो लोग उनको सहसा देखते हैं उनके हृदय पर कितना प्रभाव पड़ता है किन्तु वही अमानुषिक वेदना नित्य-प्रति देखते देखते लोग इतने आदी हो जाते हैं कि उनके लिये यह दृश्य आश्चर्य की वस्तु नहीं रह जाती। किन्तु वही व्यक्ति धन्य है जिसने इन वेदनाओं को देख कर क्षणिक आश्चर्य और दुख प्रकट कर उन्हें भुला नहीं दिया किन्तु उनके विरुद्ध प्राणपणसे आन्दोलन किया है। हम सभी नित्य प्रति गूंगे पशुओं की पीड़ा देखते हैं, अबोध बच्चों की कातरता देखते हैं, मूक पक्षियों की वेदना मन ही मन अनुभव करते हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण अपने स्वार्थ के कामों में लग कर उनको भुला देते हैं। यही मनुष्य स्वभाव है। किन्तु एक आत्मा ऐसी थी, एक महात्मा पर इन दृष्यों का प्रभाव इतना गहरा पड़ा था कि वह उनको कभी नहीं भुला सका। उसने उन मूक पशुओं की वकालत कर संसार से कहा कि अहिंसा ही सब से बड़ा धर्म है। केवलकहा हीनहीं, उसके लिये अपना धन, पदवी, सभी कुछ, यहां तक कि जीवन भी अर्पण कर दिया। वह आत्मा (भगवान बुद्ध) आज परमात्मा का अवतार मानी जाती है। इसी प्रकार युद्ध के भीषण दृष्य कितने ही लोगों ने देखे हैं किन्तु कितनों ने उनके विरुद्ध

आन्दोलन किया है? निष्क्रिय प्रतिरोध के पक्षपाती महर्षि टाल्स्टाय उन्हीं थोड़ी सी महान आत्माओं में थे। उनका एक उपन्यास जिसका नाम 'युद्ध और शान्ति' है, इसी विषय से भरा है। युद्ध का भीषण चित्र जैसा इस अनुपम चित्रकार ने उस उपन्यास में खींचा है वैसा अन्य कहीं नहीं मिल सकता। युद्ध भूमि के चित्र तो बहुत खींचे गए हैं किन्तु युद्धकाल के चित्र खींचने में टाल्सटाय ने कमाल कर दिया है। बसे बसाये घर, जिनमें प्रेम का राज्य स्थापित था, किस प्रकार युद्धाग्नि में भस्म हो गये हैं, गांव के शान्ति प्रिय निवासी युद्ध के कारण किस प्रकार कठिन श्रम से संचित धन और धान्य से बंचित होकर दुर्दशाग्रस्त हो गये हैं, हृदयों में आशाओं को लिये हुये नवयुवक किस प्रकार युद्ध के बध में बलि चढ़े हैं किस प्रकार निर्दोष व्यक्तियों का रक्तपात किया गया है, किस प्रकार वे लोग जिन्होंने कभी एक दूसरे को नहीं देखा और जिनको आपसमें लडनेका कोई कारण नहीं है, एक राक्षसी प्रवृत्ति में पड़कर एक दूसरे का गला काटते हैं, यह सभी चित्र आधुनिक कालके इस व्यास ने बड़ी ही खूबी के साथ खींचे हैं। यदि टालस्टायने सिवास्टोपोल की भीषण लड़ाई में भाग न लिया होता तो कदाचित् वे इतना अच्छा उपन्यास न लिख सकते। उस युद्ध के समय भी वे मनुष्य के भाग्यों और उसके कर्तव्य पर विचार करने में मग्न थे। उन्होंने अपनी डायरी में एक स्थान पर लिखा है:—

"ईश्वर और विश्वास पर वादानुवाद करके मैं एक महान सिद्धान्त पर पहुँचा हूं जिसको पाने के लिए मैं अपना जीवन लगा देने के लिये तैयार हूं। यह सिद्धान्त एक नए धर्म

का प्रवर्तक है। यह नया धर्म समयानुसार और मनुष्य जाति के विकाश के अनुकूल होना चाहिये। यह धर्म चाहे महात्मा ईसामसीह के धर्मके समान ही हो, किन्तु इसको व्यावहारिक होना चाहिये; इसमें मत मतान्तरों के झगड़े और गूढ़ रहस्यों के भेद न होने चाहिये। यह धर्म भविष्य के जीवन में सुख देने का वादा न करके, पृथ्वी पर ही सुख लाभ करने की राह बतलावे। मैं इसे स्वयं समझता हूं कि यह कल्पना तभी फलीभूत हो सकती है जब कई पीढ़ियाँ लगातार इस उद्देश्य की सिद्धिके लिये उपाय करें। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को यह कल्पना देगी, और किसी न किसी समय, चाहे विचार पूर्वक और चाहे केवल अन्ध विश्वास से उत्पन्न उत्साह के कारण, यह कल्पना वास्तविक रूप में परिणित हो जायगी। मुझे विश्वास है कि यह कल्पना रूपी सिद्धान्त धर्म के डोरे से मनुष्य जाति को बाँधने के लिये अवश्य ही उत्साहित करेगा"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि टाल्स्टाय ने सिवास्टोपोल के उस इतिहास प्रसिद्ध दुर्ग में जो स्वप्न देखा था और जिस स्वप्न को कार्य में परिणित करने का उन्होंने विचार किया था, उसे पूर्ण करने की उन्होंने आजन्म चेष्टा की उनके जीवन का केवल एक महान उद्देश्य था, केवल एकही ध्रुव था, वह उनका यह महान संकल्प था कि मनुष्य जाति को प्रेम रूपी धर्म के डोरे से बाँध कर उनको एकत्रित कर दिया जाय। जितना ही हम टाल्स्टाय के इस महान संकल्प पर विचार करते हैं, जितना ही हम देखते हैं कि उनका जीवन इस सिद्धान्त को प्रचार करने में व्यतीत हुआ उतना ही

अधिक उनका स्थान हमारे हृदय में ऊँचा होजाता है। क्रीमियन युद्ध ने मनुष्य जाति के लिये यह महत्व का सिद्धान्त एक महान् आत्मा के हृदय में आरोपित कर दिया। आज तो नहीं, किन्तु एक समय आवेगा जब यह सिद्धान्त मनुष्य जाति में सर्व-मान्य ही नहीं किन्तु कर्तव्यकर्म हो जायगा और तब टालस्टाय की आत्मा अपने पवित्र शान्तिवास से सन्तोष और हर्ष के साथ देखेगी कि मनुष्य—जैसा कि सर्वथा उचित है—एक दूसरे के साथ प्रेम पूर्वक रहकर शान्ति के उपासक हो रहे हैं।

सन् १८५५ में सिवास्टोपोल का पतन हुआ। रूसी फ़ौज तितर बितर होगई। टालस्टाय अन्तिम घटनाओं की रिपोर्ट लेकर पैट्रोग्रेड (सेन्टपीटर्सबर्ग) गये। वहां से वे घर लौटे। घर लौटकर उन्होंने सेना से सदा के लिये विदाई लेली।

सैनिक सेवा के पश्चात्

जब टालस्टाय सिवास्टोपोल में थे तब उन्होंने पैट्रोग्रेड (तत्कालीन सेन्टपीटर्सबर्ग) के प्रसिद्ध पत्र साव्रेमैनिक में सिवास्टोपोल और युद्ध सम्बन्धी लेख भेजे थे। वे लेख जनताको बहुत ही रोचक मालूम हुए, उन लेखों ने टालस्टाय के लिये नाम और स्नेह पैदा कर लिया। यहां तक कि स्वयं ज़ार ने सिवास्टोपोल दुर्ग के रक्षक अधिनायक से ताकीद कर रक्खी थी कि इस नवयुवक के जीवन की भरसक रक्षा की जाय। सो जब वे युद्ध के बाद राजधानी में पहुंचे तब 'साव्रेमेनिक' के सम्पादकीय विभाग के सदस्यों ने उनका बड़े स्नेह पूर्वक स्वागत किया। उस समय रूसी साहित्य में टुर्गेनफ़ का आ-

सन बड़ा ऊंचा था। टाल्स्टाय टूर्गेनफ़ को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। टूर्गेनफ़ ने टाल्स्टाय की गल्पें पढ़ी थीं और वे उनसे स्नेह करने लग गए थे। उन्होंने टाल्स्टाय को अपने साथ सेन्टपीटर्सबर्ग में रहने के लिए निमंत्रित भी किया। उन्होंने अपने अतिथि का सत्कार बड़े प्रेम पूर्वक किया किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम था जिसे वे अपना शिष्य समझ रहे थे वह वास्तव में स्वयं उनसे आगे बढ़ गया था। जीवन में आगे चल कर टूर्गेनफ़ ने अपने स्नेही मित्र से दूर रहना स्थिर किया, किन्तु वे जीवन पर्यन्त टाल्स्टाय के गुणों की प्रशंसा करते रहे और उनसे स्नेह करते रहे तथा बराबर वे उनकी उन बातों को जिन्हें वे 'झक' कहा करते थे, तर्क से काटने की चेष्टा करते रहे।

साव्रेमैनिक पत्र के सम्पादकीय विभाग के केवल एक व्यक्ति से उनकी अधिक घनिष्टता बहुत दिन रही। वह व्यक्ति कवि फेट था।

फेट को छोड़कर उन सभी साहित्य सेवियों से जो सेन्टपीटर्सबर्ग में विद्यमानथे उनसे और किसी से नहीं पटी। उनमें संघशक्ति से काम करने की योग्यता थी ही नहीं, उनमें अपनापन इतना अधिक था कि उन्हें सदा यह भय रहता था कि कहीं वे अपने को दूसरे के कारण भुला न दें। उन्हें सदा अपनी विचार स्वतन्त्रता के नष्ट होने का भय रहता था। तत्कालीन साहित्य सेवियों से न पटने का मुख्य कारण यही था।

सेना से अवसर प्राप्त कर लेने पर टाल्स्टाय को विदेश यात्रा की धुन सवार हुई। सन् १८५८ ई० के नवम्बर मास

में उनका इस्तीफ़ा मंजूर हुआ और वे एकदम यात्रा के लिये चल पड़े। यात्रा जाने से पहिले वे यासनाया पालियाना गए। सेना में रह कर वे एकान्त जीवन से ऊब गये थे और पारिवारिक सुख प्राप्त करने के लिये उत्सुक हो रहे थे। उसी समय उनका स्नेह अपने पड़ोस के एक अमीर की युवती कन्या से होगया, उस समय टाल्स्टाय ने एक औपन्यासिक चाल चली। यह जांचने के लिये कि कहीं उनका प्रेम अस्थिर तो नहीं है, वे उस युवती से दूर रहने के लिये सेन्टपीटर्सबर्ग लौट गए। वहां से वे बराबर उस कन्या से पत्र व्यवहार करते रहे वे उस कन्या को अपनी भावी पत्नी समझते थे। इन दोनों का पत्र व्यवहार बड़ा ही रोचक है। टाल्स्टाय के पत्रों से मालूम होता है कि वे उस अनुभव हीन कन्या को अच्छी पत्नी और माता बनाने की चेष्टा कर रहे थे। किन्तु उनका प्रेम इतना चिरस्थायी नहीं था। जिसे हम प्रेम समझते हैं बहुधा वह भ्रम होताहै। शैक्सपियरने एकस्थान पर लिखा है कि हमको बतलाओ क्षणिक मनोराग की उत्पत्ति कहां है? वह हृदय में या मस्तिष्क, कहां उत्पन्न होता है? वह कैसे उत्पन्न होता है और कैसे पुष्ट होता है? "वह आंखोंमें उत्पन्न होता है, और वह देखने से पुष्ट होता है किन्तु वह तुरन्त ही नष्ट भी होजाता है।" मनुष्य के फ़ीसदी निन्यानवे प्रेमों का यही हाल है। हम किसी को देखते हैं और समझते हैं कि हम उससे प्रेम करते हैं। हमारी आंखें—जो हमारे शरीर का सब से कमज़ोर अवयव है—उसको देखने को उत्सुक रहती हैं। उसको देखने की इच्छा वेगवती चढ़ी हुई नदी के समान बड़ीही प्रबल होती है। किन्तु क्या वह इच्छा चिरस्था-

यिनी होती है ? नहीं—वह इच्छा थोड़े ही समय में नदी के समान फिर बैठ जाती है। सच्चे प्रेम में बहुत कम बेग होता है। किन्तु क्षणिकबेगवान प्रेम में पड़कर कितने ही युवक और युवती अपने जीवन के सब से नाज़ुक और महत्व पूर्ण रास्ते पर क़दम रख देते हैं। इसका परिणाम जीवन पर्यन्त दुख और मानसिक अशान्ति होती है। टाल्स्टाय मनुष्य के मनोविज्ञान के पूर्ण आचार्य थे और उन्होंने अपने इस ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग किया। दूर रहने के कारण, तथा कृत्रिम और अस्थिर होने के कारण वह प्रेम क्रमशः शान्त होने लगा। अन्त में एक ने दूसरे को स्वतन्त्रता दे वह पत्रव्यवहार बन्द किया। इसके बाद ही सन् १८५७ के जनवरी मास में उन्होंने विदेश के लिये प्रस्थान किया। उस समय रूस में रेलों की संख्या बहुत कम थी। सेंट पीटर्सबर्ग से पोलेण्ड की राजधानी वारसा तक तो वे घोड़ा गाड़ी में, और वहां से रेल द्वारा पेरिस को चलदिये। पेरिस में पहुंच कर उनसे टूर्गेनफ़ से फिर साक्षात् हो गया। इस साक्षात् में दोनों की घनिष्टता खूब बढ़ी।

पेरिस में पहुंच कर टाल्स्टाय का तत्कालीन सभ्यता के साथ सामना हुआ। पीटर महान—जिसने आधुनिक रूस की नींव डाली है—चाहता था कि उसका देश योरोप के अन्य देशों की सभ्यता ग्रहण करले। इसका विरोध तत्कालीन रूसियों ने किया था किन्तु पीटर के निर्दयी स्वभाव से डर कर किसी को उसके विरुद्ध चूं करने का साहस न हुआ। तब से विचारवान रूसियों के सामने यह प्रश्न उपस्थित था कि रूस में पश्चिमी यूरप की सभ्यता फैलाई जाय या नहीं।

टालस्टाय की विदेश यात्रा का यह भी एक उद्देश्य था।

किन्तु पेरिस पहुंचने के कुछ दिन बाद उन्होंने एक व्यक्ति को—जिसे प्राणदण्ड की आज्ञा हुई थी—गिलोटिन से मरते हुये देखा। गिलोटिन एक विशेष प्रकार का यन्त्र है। इसे फ्रांस के किसी गिलोटिन नाम के व्यक्ति ने ईजाद किया था और यह अपने आविष्कार करनेवाले के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें मनुष्य का सिर रख दिया जाता है और कागज़ की कटिंग मशीन की तरह ऊपर से छुरी गिरकर उस व्यक्ति की गर्दन काट देती है। इस यन्त्र से मनुष्य बड़ी यन्त्रणा के साथ मरता है। टालस्टाय के ऊपर इस दृश्य का बड़ा प्रभाव पड़ा, उन्होंने इस दृश्य का चित्र इस प्रकार खींचा है।

"जब मैंने देखा कि सिर धड़ से अलग कर दिया गया और सिर शब्द करता हुआ टोकनी में गिरा तब मैंने केवल ज्ञान ही से नहीं किन्तु सारे शरीर के द्वारा समझा कि अर्वाचीन सभ्यता की कुल संस्थाएं और विचार शक्ति के सिद्धान्त मिलाकर भी इस कार्य को उचित प्रमाणित नहीं कर सकते। यद्यपि अनन्तकाल से लोगों ने किसी सिद्धान्त के अनुसार यह कार्य करना उचित समझा था—उचित ही नहीं किन्तु आवश्यक समझा था, तथापि मैं जानता हूं कि यह सब निरर्थक है। यह बेफायदा है, यह बुराई है। मैंने यह भी समझा कि अच्छाई या बुराई का भाव वह नहीं है जो मनुष्य कहते हैं या उन्नति बतलाती है किन्तु वह जिसे मैं समझता हूं और जिसका समर्थन मेरा हृदय करता है।"

इस गिलोटिन दृश्य के एक दिन बाद उन्होंने अपनी डायरी में लिखा था :—

"मैं सात बजे सवेरे उठा और गिलोटिन देखने चला। जिसको प्राण दण्डाज्ञा दी गई थी वह व्यक्ति बड़ा ही स्वस्थ था। उसका सीना निकला हुआ था और गर्दन मोटी थी। बदन बहुत गोरा था. पहिले उसने बाइबिल का चुम्बन किया और फिर मृत्यु का आलिंगन किया। यह सब कितनी मूर्खता है। इसने मेरे हृदय में गहिरा प्रभाव डाला है जो व्यर्थ न जायगा। मैं कोई राजनीतिज्ञ व्यक्ति नहीं हूं, मैं केवल साहित्य और नैतिक विज्ञान जानता हूं। मैं प्रेम करना जानता हूं। ... .इस गिलोटिन के दृश्य के कारण मैं कई दिन तक सो नहीं सका और बहुधा इस दृश्य की याद आते ही मैं चौंक जाता हूं।"

पैरिस के अशान्त जीवन को छोड़कर वे स्विटज़रलेण्ड गये। सुहावने जिनेवा झील के ऊपर बसे क्लैरेन्स नामक स्थान में वे ठहरे। स्विटज़रलेंड को योरप में वही ख्याति प्राप्त है; जो काश्मीर को भारतवर्ष में प्राप्त है। यह पहाड़ी देश आल्प्स नामक पर्वत माला से घिरा हुआ और उसीसे बना है। स्थान स्थान पर झीलें, नदियाँ, झरने तथा हिम-मण्डित पर्वत शृङ्ग और हरे हरे जंगल मिल कर स्विटज़रलेण्ड को कल्पनातीत सुन्दरता प्रदान करते हैं। लोग दूर दूर से पार्वतीय सौंदर्य की शोभा देखनेके लिये वहां आते हैं। विशेषकर जिनेवा झील के तट का दृश्य तो बडा ही रमणीक, बडा ही चित्ताकर्षक और बड़ा ही आनन्ददायक है। टाल्स्टाय ने वहां का एक दृश्य इस प्रकार वर्णन किया है:

"१५ मई को आकाश स्वच्छ था। मेरे तीन ओर जिनेवा झील थी। उसके चमकीले नीले-गहरे नीले जल में स्वेत और

काले विन्दुओंकी भांति पालदार और साधारण नौकाएं पड़ी हुई थीं। झील की ओर,और झील के ऊपर गर्म हवा चक्कर खा रही थी, दूसरी ओर सैवाय के शस्य श्यामल पर्वत थे। जिनकी तराई में सफ़ेद मकान दिखलाई पड़ रहे थे और जिसमें नाना आकार की चट्टानें चमक रही थीं। बाईं ओर ख़ाकी रंग के अंगूर के बागों से कुछ ऊपर, पर्वत के पार्श्व में मांटरो बसा हुआ था। उसके सुन्दर गिरजे का भव्य शिखर बड़ा ही सुहावना मालूम होता था। झील के किनारे किनारे विलेनू लोगों के मकान बने हुये हैं। उनके मकानों की धातु की छतें मध्यान्हकाल के सूर्य की किरणों में चमक रही थीं। रोन नदी की रहस्यमयी तलैटी पर्वतों के श्रृंगों से घिरी हुई दिखला रही थी। शिलन का कृत्रिम स्वेत द्वीप जिसका वर्णन कविता में बहुधा किया गया है—विनेनू के दूसरी ओर स्थित था और बड़ा ही सुन्दर मालूम होता था।

"झील में मन्द मन्द तरंगें उठ रही थीं। सूर्य ठीक ऊपर से उसके ऊपर चमक रहा था और उसके भिन्न भिन्न भागोंमें फैली हुई नावों के भरे हुए पाल गतिहीन मालूम होते थे।

"यह दृश्य अद्भुत है। मैं पूरे दो महीने क्लेरेन्स में रहा और नित्य ही सबेरे और विशेषकर संध्या के समय में झील की ओर की खिड़कियों को खोल कर झील में पड़ते हुये सुदूरवर्ती पहाड़ों की छाया देखा करता था। इस सौंदर्य ने मुझे आनन्द विह्वल कर दिया था और उसका प्रभाव मेरे ऊपर बहुत ही अधिक पड़ा। मैं अपने बीते हुये समय के लिये दुखी था और भविष्य मुझे आशामय दीखता था। मुझे जीवन सुखमय प्रतीत होने लगा और मैं चिरकाल तक जीने की

इच्छा करने लगा। मृत्यु का भय मुझ में बालकों की समान और कवियों के समान बैठने लगा। ज़ब कभी मैं उस छोटे से सुन्दर उद्यान में बैठता और झील की ओर इकटक हो निहारता रहता तब मुझे ऐसा प्रतीत होता कि सौंदर्य मेरी आंखों होकर मेरी आत्मा में प्रविष्ट हो रहा है।"

इसके बाद टाल्स्टाय की इच्छा इस अद्भुत और सुन्दर देशके भीतरी भागको देखने की हुई। वे पैदल और घोड़े पर यात्रा करते हुए ल्यूसर्न झील पर पहुँचे। यहां वे एक सर्वोत्तम होटल में ठहरे।

ल्यूसर्न अंग्रेज़ों को बहुत ही पसन्द है। उस समय भी वहां अंग्रेज़ यात्री ही अधिक थे। अंग्रेज़ों की रुचि के अनुसार ल्यूसर्न के प्राकृतिक किनारे में पत्थर के घाट बनवा दिये गये थे। टाल्स्टाय को झील और प्रकृति की प्राकृतिक सुन्दरता के बजाय यह बनावटी सौन्दर्य पसन्द न आया।

जिस समय टाल्स्टाय वहां पहुँचे वहां उस समय एक नवयुवक साधारण गानेवाला आया हुआ था। उसका गला सुरीला था किन्तु अंग्रेज़ यात्री उसके इस सुरीले गाने के बदले उसको कुछ न देते थे और उसे तुच्छ दृष्टि से देखते थे। टाल्स्टाय ने, जो स्वभाव ही से पद-दलित और तुच्छ व्यक्तियों के मित्र थे, यह देख कर उस मँगते गानेवाले को अपने साथ भोजन करने के लिये निमंत्रित कर दिया। उनके इस कार्य से अंग्रेज़ यात्रियों और होटलवालों में बड़ी सन-सनी फैल गई। यह घटना उन्होंने अपने उपन्यास ल्यूसर्न में लिखी है। उसके बाद ही उन्होंने परमात्मा के प्रति एक प्रार्थना लिखी है। वह प्रार्थना बड़े ही महत्व की है। उससे टाल्स्टाय

के हृदय का अच्छा परिचय मिलता है। वह प्रार्थना यह है:—

किसने उस सुख को नापा है जो इस जैसे प्रत्येक तुच्छ व्यक्ति की आत्मा में विद्यमान है। वह किसी मैले दर्वाजे पर बैठ कर चमकते हुए चन्द्रमा से दीप्त आकाश की ओर निरखता हुआ नीरव और सुहावनी रात्रि में गा रहा है। उसकी आत्मा में दुख का लेश नहीं है, क्रोध की चिनगारी नहीं है और दूसरों को झिड़की देने के लिये स्थान नहीं है। और कौन जानता है कि इन प्रशस्त और भव्य दीवालों के उस ओर उन धनिक व्यक्तियों के हृदयों में कौन से भाव जागृत हो रहे हैं? कौन कह सक्ता है कि उनके हृदयों में भी इस तुच्छ व्यक्ति की समान निश्चिन्तता, जीवन के आनन्द का अनुभव और संसार के साथ मिलान वर्तमान है या नहीं? उस परमात्मा की कृपा और बुद्धिमत्ता का अन्त नहीं है जिसने संसार में इन दो परस्पर विरोधी वस्तुओं को रहने दिया है। ऐ तुच्छ कीट (मनुष्य)! तुझे जो सदा उस परमात्मा की इच्छाओं और आशाओं के जानने को उत्सुक रहता है, तुझे ही ये बातें परस्पर विरोधी जान पड़ेंगी। वह उस ऊँचाई से करुणा पूर्वक तुम्हारी ओर देखता है। वह इस दशा ही को ठीक और संयुक्त दशा समझता है जिसे तुम परस्पर विरोधी समझते हो और जिसमें तुम निरन्तर रहते हो और वह तुम्हें इस दशा में देखकर आनन्द अनुभव करता है। अपने अभिमान में आकर तूने विश्व के नियम से बचना चाहा था; तू, जो दरिद्रियों को तुच्छ और घृणा भरी दृष्टि से देखता है, तू भी अनन्त और अनादि पुरुष की बनाई इस संयुक्त दशा में रहता है।"

ल्यूसर्न से टाल्स्टाय जर्मनी होते हुए अपने देश को लौट आए। उनके लौटने के उपरान्त कुल परिवार जाड़ा व्यतीत करने के लिये मास्को चला गया।

मास्को में जिमनास्टिक, शिकार और ऐसी ही बातों में उनका समय व्यतीत होने लगा। वहां से लौट कर यासनाया पालियाना में वे अपनी ज़मींदारी के पूबन्ध की देख भाल करने लगे। अगले साल वे मास्को की साहित्य परिषद के सदस्य चुने गए।

परिषद के सदस्यों ने उनका अच्छा स्वागत किया और तब से रूसी साहित्य में उनका आसन बराबर ऊँचा होता गया। साहित्य ही में नहीं, किन्तु सारे देश में उनका पूभाव फैलना आरंभ होगया।

रूसी दासों की स्वतन्त्रता

इस समय टाल्स्टाय को एक बड़ा दुःख सहना पड़ा, अवश्य ही उस दुखने उनके हृदय पर अपना पूरा प्रभाव डाला था किन्तु उस दुख में भी टाल्स्टाय को नैतिक उन्नति का लाभ हुआ और तब से उनको मृत्यु के गूढ़ रहस्य को समझने की उत्कट इच्छा हुई। इन दो ही विषयों को—मनुष्य जाति को प्रेम रूपी धर्म के डोरे में बांधना और मृत्यु का रहस्य जानना—टाल्स्टाय जीवन के सबसे महत्व के प्रश्न समझते थे। पहिले प्रश्न की जागृति उनके हृदय में किस प्रकार हुई थी यह हम पीछे कह आए हैं। दूसरा प्रश्न किस तरह उनके हृदय में पुष्ट हुआ, वही यहां लिखा जाता है।

E.C.C.L.

हम कह आये हैं कि वे अपने बड़े भाई निकोलस से बड़ा स्नेह करते थे। निकोलस सचमुच स्नेह करने योग्य व्यक्ति थे। टालस्टाय ही नहीं किन्तु उनके कितने ही मित्र निकोलस को स्नेह की दृष्टि से देखते थे। निकोलस का स्वास्थ्य दिनों-दिन गिरता जा रहा था। डाक्टरों ने उनको क्षयरोग से पीड़ित समझा और उन्हें सोडेन जाने की सलाहदी। डाक्टरों की सलाह के अनुसार वे अपने भाई सर्जिमस के साथ गर्मी में सोडेन गये। यद्यपि सोडेन में पहुंच कर उनको पहिले कुछ लाभ मालूम हुआ किन्तु फिर उनके रोग ने ज़ोर पकड़ लिया और उनकी दशा शोचनीय होने लगी। सोडेन जानेके पहिले टूर्गेनफ़-ने जो उस समय पेरिस में थे—टालस्टाय को लिखा था—"तुम्हारे पत्रने जिसमें तुमने निकोलस की बीमारी का हाल लिखा है मुझे बहुत विचलित कर दिया है। क्या यह सम्भव है कि यह प्रिय और प्रेम करने योग्य व्यक्ति इस संसार से चला जायगा? तुम लोगों ने इस रोग को इतना क्यों बढ़ने दिया?।

किन्तु सोडेन में जब निकोलस का स्वास्थ्य न सँभला प्रत्युत और ख़राब होने लगा तब टालस्टाय अपनी बहिन के साथ स्वयं वहां गये।

टालस्टाय अपने देश की शिक्षा प्रणाली से असन्तुष्ट थे। उन्होंने अपनी पिछली योरोपियन यात्रा में इस विषय पर ध्यान नहीं दिया था। सो उन्होंने बहिन को तो सीधे सोडेन भेज दिया और वे स्वयं जर्मनी घूमते हुये आगे बढ़े। जहां कहीं वे जाते तो अवसर पाते ही अवश्य वहां के स्कूलों को देखते। उन्होंने स्वयं एक स्कूल स्थापित करने का निश्चय

कर लिया और इसी कारण वे स्कूल के प्रबन्ध और आरम्भिक शिक्षा प्रणाली को बड़ी सावधानी से अध्ययन करते थे। जर्मन स्कूलों को देखकर उनको सन्तोष नहीं हुआ उन्होंने एक जगह एक जर्मन स्कूल के बारे में लिखा है कि मैंने एक स्कूल देखा, वहां का ढंग बड़ा ही विचित्र है। प्रत्येक बात रटाने का प्रयोग किया जाता है-लड़कों पर खूब ठुकाई पड़ती है— लड़के अपने स्वाभाविक रूपमें न रहकर बनावटी हो गये हैं।

स्कूल देखने के सिवाय वे तत्कालीन बड़े बड़े जर्मन लेखकों, अध्यापकों और विद्वानों से मिले, बर्लिन में ठहर कर उन्होंने प्रसिद्ध अध्यापकों के व्याख्यान सुने। समय मिलते ही वे शिक्षा सम्बन्धी ऐतिहासिक और दार्शनिक ग्रंथ पढ़ा करते थे। इस प्रकार घूमते घामते और अपने समय का सदुपयोग करते हुए वे सोडेन पहुंचे। वहां पहुंच कर उन्हें मालूम हुआ कि उनके भाई के दिन इस संसार में पूरे हो गए हैं। सोडेन में अधिक लाभ की संभावना नहीं थी। अतएव वे भाई को लेकर फ्रांस के सुप्रसिद्ध समुद्र तट राइवीयरा गये। और 'हायेरे' में ठहरे, किन्तु रोग बहुत बढ़ गया था। इस स्थान में आकर निकोलस ने अपनी मानवी लीला संवरण की।

मरते समय निकोलस महात्मा टालस्टाय की गोद में पड़े थे। टालस्टाय ने अपने प्यारे भाई को मृत्यु से युद्ध करते देखा उन्होंने मृत्यु की साक्षात छाया देखी। उन्होंने मृत्युकाल की वेदना और अपने भाई को उसकी साहसिक सामना करते देखा। इस दृश्य ने उनके संचेत्य हृदय के ऊपर बड़ा ही गहरा प्रभाव डाला। जैसा कि हम इस अध्याय के आरम्भमें कह आये हैं—उन्होंने तभी से मृत्यु के गूढ़ रहस्य को समझने का

उद्योग करना आरम्भ किया और तभी से यह विषय उनके लिये बड़े ही महत्व का विषय हो गया। अपने भाई की मृत्यु के बाद उन्होंने जो पत्र अपने मित्र फेट को लिखा था उससे उनके उस समय के भाव भलीभांति विदित होते हैं :—

निकोलस कहा करते थे कि मृत्यु से बढ़कर खराब वस्तु संसार में कोई नहीं है। उनका यह कथन बिलकुल ठीक था। जब मृत्यु ही सब का अन्त कर देती है तो यह जीवन बिलकुल तुच्छ प्रतीत होता है। यदि निकोलस के लिये इस संसार में मृत्यु के कारण कुछ नहीं रह गया तो उनका इस जीवन के साथ युद्ध करना ौर इस जीवन में (सांसारिक वस्तु प्राप्त करने का) उद्योग करना व्यर्थ था। उन्होंने मुझ से यह नहीं कहा कि वे मृत्यु का अपनी ओर बढ़ना अनुभव करते थे किन्तु मैं जानता हूं कि वे मृत्यु का अपनी ओर पग पग बढ़ना देखते थे और उसका परिणाम भली भांति समझते थे। मरने से कुछ समय पहिले उनको झपकी सी आगई और उस झपकी से एकाएक चौंककर वे बोल उठे कि 'यह क्या है?' उन्होंने मृत्यु को प्रत्यक्ष देखा और उन्होंने यह अनुभव किया कि वे सदा के लिये अंधकार में डूबे जा रहे हैं। और यदि निकोलस ही को मृत्यु से बचने का कोई सहारा न मिला तो मुझे क्या मिलेगा? न तो मैं और न और बहुत से व्यक्ति मृत्यु से इस मर्दानगी के साथ लड़ सकते हैं जिस प्रकार निकोलस अन्तकाल तक लड़ते रहे। जो लोग उनके पास थे वे कहते थे कि उनकी मृत्यु कितनी शान्तिपूर्वक हुई किन्तु चूंकि मुझसे उनका कोई भी भाव नहीं छिपा था इस लिये मैं जानता हूं कि वह उनके लिये बड़ा ही कष्ट कर समय था।

मैं अपने से सैकड़ों बार कहता हूं कि बीती बात भूल जाओ किन्तु मनुष्य को अपनी बची शक्ति का उपयोग करना ही पडता है। तुम पत्थर के टुकड़े को आकर्षण के विरुद्ध नीचे गिरने के बजाय ऊपर चढ़ने को नहीं कह सकते। तुम नित्य-प्रति बारबार सुनी हुई हंसी की बात पर हँस नहीं सकते, जब तुम्हें भूख नहीं लगी तब तुम भोजन नहीं कर सकते। संभव है कि कल ही मैं मृत्यु की यंत्रणा अनुभव करने लगूं जिसके समाप्त होते ही मेरे लिये संसार में कुछ न रह जायगा। क्या इस अवस्था में (जब मृत्यु हमारे सिरपर सदा खड़ी है) कष्ट उठाने से कोई लाभ है? कितने आश्चर्य की बात है कि लोग दूसरों से कह दिया करते हैं कि जब तक तुम जियो सुखी रहो, दूसरों के लिए लाभदायक बनो पुण्यात्मा बनो। किन्तु उपयोगिता सच्चरित्रता और सुख सभी एक सत्य में विद्यमान हैं और बत्तीस सालके जीवन के बाद मैंने यही सत्य पाया है कि हमारे जीवन की दशा अति भयानक है।

लोग कहा करते हैं जीवन जैसा भी कुछ है वैसे ही से सन्तोष करो क्योंकि स्वयं तुमने अपने आपको इस दशा में ला रखा है। बहुत अच्छा मैं जीवन को कि जैसा मैं उसे पाता हूं स्वीकार किये लेता हूं। किन्तु जब मनुष्य पूर्ण रूपसे विकसित हो जाता है तब वह देखता है कि सभी कुछ व्यर्थ है सभी कुछ धोखा है, सभी कुछ मिथ्या है और यह सब होने पर भी जिसे (जीवन को) वह सर्वोपरि चाहता है वह भयंकर है। जब वह इसको स्पष्ट रीति और भलीभांति से से समझ लेता है तब वह भयसे चिल्ला उठता है कि यह

क्या है ? अवश्य ही जब तक मनुष्य में सत्य जानने और बोलने की इच्छा विद्यमान रहती है तब तक वह ऐसा करने की चेष्टा करता है। जितने नैतिक अनुभव मैंने पाये थे। उन में से केवल इसीको मैं अभी तक ठीक समझ सका हूं। और इससे अधिक ऊपर मैं नहीं जा सकता। भविष्य में मैं यही करूंगा किन्तु तुम्हारी कला (कविता, साहित्य) के रूप में नहीं। कला मिथ्या है। और मैं अब सुन्दर मिथ्या बात से अधिक दिनों प्रेम नहीं कर सकता।"

इन पंक्तियों को पढ़ते हुए यह ध्यान रखना चाहिये कि टाल्स्टाय ने इन्हें मानसिक वेदना के समय लिखा था। इन्हें उन्होंने उस समय लिखा था जब उनके मस्तिष्क में विचारों का भूकम्प आया हुआ था। जब वे दुख और मानवी जीवन के अंधेरे भाग की ओर देख कर जीवन की आशायें और जीवन की सत्य बातों को मिथ्या और भ्रम पूर्ण समझने लगे थे, और जब योरप की जड़ता (Materialism) केविरुद्ध उनके मन की प्रतिक्रियादूसरे सिरे तक पहुंच गई थी। इन पंक्तियों को पढ़ने से मालूम होगा कि टाल्स्टाय के समान महात्मा भी दुःख के दबाव से और मृत्यु तथा निराशा के बोझ से ऊब कर कहने लगते हैं कि जीवन व्यर्थ है—जीवन मिथ्या है, जीवन की अवस्था भयानक है। तब हमारी तरह तुच्छ व्यक्ति यदि जीवन के कष्टकर भाग को देख कर घबड़ा जांय तो कुछ आश्चर्य नहीं। दूसरी बात यह है कि मनुष्य को चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो—स्वभाव ही से अपनी आत्मा के विकाश काल में नाना प्रकार की अवस्थाओं में होकर जाना पड़ता है। जिस व्यक्ति ने कुल अवस्थाओं के

सुख दुख का अनुभव नहीं किया उसका जीवन संपूर्ण नहीं कहा जा सकता। जीवन के उत्तर काल में समझदार और तार्किक पुरुषों के लिये बहुधा यह आवश्यक होता है कि वह अपनी युवावस्था के अव्यवस्थित और अस्थिर समय में नास्तिक हों। स्वामी विवेकानन्द जी कदाचित् इतने बड़े आस्तिक न होते यदि अपनी युवावस्था में उन्होंने ईश्वर की सत्ता पर सन्देह न किया होता। इसी प्रकार टाल्स्टाय के लिये, जिसने यह कहा है कि 'सर्वोपरि मैं यह जानता हूं, और यह मैं भली भांति जानता हूं कि दूसरों के साथ भलाई करना ही जीवन का सच्चा सुख है,—उनके लिये यह आवश्यक था कि इसे 'सर्वोपरि' 'और भली भाँति' जानने के लिये वे जीवन को भयानक समझते, उपयोगिता, सच्चरित्रता और सुख को एक ऐसे तत्व में गुँथा हुआ देखते जिसका सत्य होना मानव-जाति की उन्नति के लिये सदैव वांच्छनीय है।

इस मानसिक दुख के समय भी उनके हृदय की परोपकारिता और विश्व प्रेम की अग्नि बुझी नहीं थी। इस गहरे धक्के से कुछ संभलते ही वे फ्रांस, जर्मनी और इङ्गलैण्ड में घूमने और उन देशों की आरम्भिक शिक्षा प्रणाली को देखने लगे।

उसी समय रूस के निरंकुश ज़ार निकोलस पहिले की भी मृत्यु हुई। अलेक्ज़ेण्डर दूसरे ज़ार हुए उस समय क्रीमियन युद्ध से देश की दशा बड़ी ख़राब होगई थी और लोग 'सुधार' 'सुधार' चिल्ला रहे थे। रूस को पहिले कभी प्रेस की स्व-

तंत्रता नहीं मिली थी, उस समय उनकी बागडोर कुछ ढीली कर दी गयी थी। इस कारण उस समय की रूस की आवश्यकताओंसे तत्कालीन पत्र भरे रहते थे। पत्रोंकी माँग इतनी बढ़ गई थी कि युद्ध के बाद एक ही दो साल में पैट्रोग्रेड और मास्को से प्रायः ७० नए पत्र निकलने लगे। लोगों में उदार विचार और उदार सुधारों की चर्चा बड़ी गर्मी के साथ होने लगी। सो जब अलेकज़ेन्डर ने राज्य का भार लिया तब सारे रूसी उनकी ओर सुधार की आशा से टकटकी लगाए देख रहे थे।

जनता में जिस सुधार की सब से अधिक चर्चा थी और जिसकी सब से अधिक आवश्यकता भी थी, वह सुधार रूसी दासों को स्वतन्त्रता देने का था। सारे रूसी किसान दास थे, सभी दासत्व की श्रृङ्खलामें बंधे थे। इनकी संख्या ४८००००० थी। दासता की बेड़ी में जकड़े हुए ये किसान अपने स्वामियों के खेतों में काम करते थे और यदि खेत बिक जाते तो वे भी उनके साथ बेच दिये जाते थे। खेत के मालिक के वे सब तरह से दास थे। वे उनके साथ मनमाना बर्ताव करते थे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि रूस में यह प्रथा केवल सोलहवीं सदी में प्रचलित हुई थी। ज़ारीना कैथरीन द्वितीय और अलेकज़ेण्डर प्रथम ने पहिले भी इस सुधार को देश में चलाना चाहा था। किन्तु रूस के इन दोनों महान् शासकों के समय में देश बड़े बड़े युद्धों में इतना मग्न था कि इस ओर ध्यान देना उन लोगों ने उचित न समझा, किन्तु जब अलेक्ज़ेण्डर, जो युवक थे और जो उदार दल वालों से सहानुभूति रखते थे, गद्दी पर आये तब सर्वसाधारण

की आशाएं हरी हो गईं । स्वयं ज़ार निकोलस प्रथम ने मरते समय अलेकज़ेण्डर से इस पुण्य कार्य को पूर्ण करने का वचन ले लिया था। बड़े बड़े सर्दार और धनिक व्यक्ति स्वभाव ही से इस सुधार के विरोधी थे। किन्तु अलेक्ज़ेण्डर ने राज्याधिकार प्राप्त करते समय उन लोगों को इस सुधार के पक्ष में लाने का सफलता पूर्वक उद्योग किया। इसके कुछ दिनों बाद ज़ार ने बड़े बड़े ज़मींदारों की एक कमेटी बनाई और उसको इस महत्व पूर्ण सुधार के ढंग कुछ दिये हुए सिद्धान्तों के अनुसार बनाने का काम सौंपा। तीनसाल के वादानुवाद, टीका टिप्पणी और सोचा समझी के बाद सन् १८६१ ई० के फ़रवरी मास में दासों को स्वतंत्रता देने की घोषणा की गई।

इस नये कानून के अनुसार छोड़े हुए दासों और ज़मींदारों में समझौता कराने के लिये प्रत्येक प्रान्त में पंच नियुक्त किये गये थे। इन पंचों में हमारे चरित नायक भी थे। इन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार दासों ही का पक्ष लिया। ज़मींदार तो इन स्वतंत्र किये हुये दासों को धोके में डाल कर फांसना चाहते थे किन्तु महात्मा उनको बचाने का उद्योग करते थे। उनके इस कार्य ने उनके बहुत से शत्रु उत्पन्न कर दिये। सरकार के पास उनकी गुप्त शिकायतें पहुंचने लगीं। इसका परिणाम यह हुआ कि साल भर के अन्दर ही अन्दर उनको अपने पद से इस्तीफ़ा देना पड़ा।

टालस्टाय ने जब दासों की स्वतंत्रता के बाद पंच के पदसे इस्तीफ़ा दे दिया तब उन्होंने अपने को शिक्षा सम्बंधी उद्योगों में लगाया। महान् पुरुष शिक्षा देने में बड़ी प्रसन्नता

प्राप्त करते हैं—महात्मा टाल्स्टाय भी शिक्षक के काम को बड़े चाव से करते थे। इस संसार में यों तो बहुत अच्छे २ व्यापार हैं किन्तु वैद्यक और अध्यापकी के बराबर कोई भी महत्व पूर्ण और पुण्यशाली नहीं है। एक तो शरीर की वेदना दूर करता है दूसरे मनुष्यत्वकी शिक्षा देता है। अच्छा वैद्य और अच्छा अध्यापक इस संसार का जितना उपकार कर सकता है वह शब्दोंमें कहा नहीं जा सकता। महात्मा टाल्स्टाय इस बात को भली भांति जानते थे। उन्होंने स्वयं कई बार अपने गाँव में एक स्कूल स्थापित करने की चेष्टा की थी-किन्तु उनके बाहर रहने और अस्थिर जीवन के कारण वह चेष्टा भी स्थिर न हो सकी। तो भी जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है उन्होंने योरोप के भिन्न भिन्न देशों में घूम कर वहाँ की शिक्षा प्रणाली की खूब जाँच की। साथ में वे एक जर्मन अध्यापक हर कैलर को भी ले आये थे। पञ्चायत के झगड़े से छुट्टी पाते ही वे आरम्भिक शिक्षा के कार्य में दत्त चित्त हो लग गये और अपने गाँव में उन्होंने एक आदर्श आरम्भिक पाठशाला खोल दी। इस स्कूल का एक वर्णन यहाँ दिया जाता है।

"स्कूल ईंट के बने एक दुतल्ले मकान में है। दो कमरों में दर्जे लगते हैं। दो कमरे अध्यापकों के लिये हैं, और एक कमरे में विज्ञान सम्बन्धी वस्तुएं रक्खी जाती हैं। दर्वाज़े पर रस्सी से बंधा हुआ एक घंटा लटकता है। नीचे की पौर में जिमनास्टिक की पैरेलैल और होरीज़ेण्टल बार गड़े हुये। ऊपर के जीने के पास वाले कमरे में बढ़ई का सामान रक्खा है। पौर और ज़ीने में वर्फ और मिट्टी के पांवों के निशान बने हैं। बड़े कमरे में कार्य-क्रम टँगा हुआ है। वह कार्य-क्रम यह है-

आठ बजे अध्यापक एक लड़के से जो स्कूल ही में रहता है घंटा बजाने को कहता है। अध्यापक भी स्कूल ही में रहता है। वह बड़ा ही योग्य है।

"गांव के रहने वाले स्वभाव ही से सबेरे उठते हैं। घंटा बजने के आध घंटे बाद ही गांव और स्कूल के बीच वाले खड्ड में चढ़ते हुए कितने ही छोटे छोटे बच्चे दिखलाई पड़ने लगते हैं। चाहे कुहरा हो या पानी हो और चाहे सूर्य की धीमी किरने हों, ये लोग अवश्य ही आते हैं। ये लोग एक एक या दो दो करके आते हैं, भेड़िया धसान की तरह मिलकर चलने का भाव बहुत दिन हुए उनके हृदय से दूर कर दिया गया है। जो कुछ उन्होंने अभी तक पढ़ लिया है उसके कारण वे अधिक स्वाधीन हो गए हैं। वे अपने साथ न तो किताबें लाते हैं और न कापी! उनको घर पर करने के लिए कुछ काम भी नहीं दिया जाता। उनके केवल हाथ ही खाली नहीं रहते किन्तु उनके सिर का बोझ भी उतार दिया जाता है। इस छोटे विद्यार्थी को उस दिन का या पिछले दिन का कोई सबक़ याद नहीं कराया जाता है। उसको कार्य कराने के भय की वेदना नहीं दी जाती। वह स्कूल में केवल अपने कोमल चित्त को लेकर आता है और इस विश्वास को लेकर आता है कि स्कूल में आज भी उतना ही आनन्द मिलेगा जितना कि कल मिला था, वह अपने पाठ पर पढ़ने से पहिले विचार भी नहीं करता। देर से आने के लिए उसे कोई दण्ड भी नहीं दिया जाता, किन्तु वे कभी देर से नहीं आते, हां यदि बड़े लड़कों को उनके घर वाले कुछ काम करने के लिए रोक लें तो दूसरी बात है, और जैसे ही उनको काम से फुर्सत मिली

वैसे ही वे स्कूल की ओर शीघ्रता के साथ दौड़ते हैं।"

अब ज़रा स्कूल का सन्ध्या के समय का भी हाल सुनिये :—

स्कूल में दिया जलते समय जाइए, खिड़कियों से प्रकाश निकलता हुआ न दिखलाई पड़ेगा। सब जगह सन्नाटा छाया हुआ है, × × × × कमरे में जाइए। वहां बहुत ही धुँधला प्रकाश है, किन्तु इस लड़के के चेहरे को देखिये। वह मास्टर की ओर ध्यान पूर्वक देख रहा है। उसकी भौंहों में गांठें पड़ रही हैं वह दसवीं दफ़ा अपने कँधे से एक सहपाठी के हाथ को, जो उन पर झुका हुआ है, हटाता है। उसको गुदगुदाओ किन्तु वह नहीं हँसेगा, वह केवल ज़रा सा सिर हिला देगा मानो मक्खी उड़ारहा है। वह कहानी सुनने में मग्न है। × × × "किन्तु अब कहानी समाप्त होगई। सब लड़के खड़े हो गये और उन्होंने मास्टर को घेर लिया। अब सब ज़ोर से चिल्ला चिल्ला कर कहानी को दुहराने का उद्योग कर रहे हैं।"

"अन्त में सब क्रमशः चुप होने लगते हैं। मोमबत्ती मगाई जाती है और उनका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित होता है। प्रायः आठ बजे उनकी आंखों में नींद आने लगती है। बड़े लड़के अब भी सावधान हैं किन्तु छोटे लड़के मास्टर की आवाज़ की गुन गुनाहाट सुनते सुनते मेज़ पर अपनी २ कुहनी रख कर सो जाते ह।"

यासनाया पालियाना के आरम्भिक स्कूल का यह वर्णन है। मास्टर को सख़्त ताकीद थी कि न तो वह लड़कों को पुरस्कार दे और न ताड़ना दे। यदि हो सके तो वह उनपर नैतिक प्रभाव डाले किन्तु इससे अधिक और कुछ करने का उसे

अधिकार नहीं था। स्वाधीनता और अपने आप कामकरने की इच्छा को महात्मा जी लड़कों में पैदा करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि बालक स्वभाव से ही आसपास की बातों पर विचार किया करते हैं और वे नई नई बातें सीखना चाहते हैं। वे कहा करते थे कि बिल्कुल वेदबाव से जो बात मस्तिष्कमें चढ़ती है वही टिकाऊ होती है। स्कूल में लड़कों के ऊपर जितनी सावधानी दी जाती थी उससे अधिक ताड़ना देना माता पिताओं और अभिभावकों का कर्तव्य है। मास्टर का कर्तव्य केवल पथ प्रदर्शक का है। बालक की स्वाधीनता पर बिल्कुल ही हाथ न रखना चाहिये। लड़कों को सम्भवतः जितनी स्वतन्त्रता दी जा सकती है उतनी स्वतन्त्रता देनी चाहिये।

इस स्कूल और उनकी शिक्षा प्रणाली पर लोग इच्छानुसार सम्मति प्रकाशित कर सकते हैं। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके सिद्धान्त बड़े ही उत्तम थे। जिन्होंने इस विषय पर कुछ भी ध्यान दिया है वे कह सकते हैं कि लड़कों को योग्य, निर्भीक, व्यवहार कुशल बनाने के लिये उनको स्वाधीनता देनी आवश्यक है। किन्तु उनको साथ ही ऐसे अध्यापक के निरीक्षण में रखना चाहिये जो स्वयं इन सिद्धान्तों का समझता हो और उनपर अपने चरित्रबल का और नैतिक प्रभाव डाल सके।

शोक है कि टाल्स्टाय का यह प्रयोग बहुत दिनों नहीं चल सका। इस स्कूल की स्थापना के कुछ दिनों बाद वे बीमार हुए और जलवायु के परिवर्तन के लिये बाहर चले गये। उसी समय सन्देह में पड़कर पुलीस ने उनके गांव की तलाशी ली।

यद्यपि पुलीस को कुछ भी सन्देह जनक वस्तु नहीं मिली तथापि इस तलाशी का प्रभाव वहां के शांतिप्रिय निवासियों पर इतना अधिक पड़ा कि उन्होंने वह स्कूल बन्द कर दिया। किन्तु इस स्कूल की बदौलत रूसी भाषा में कई पाठ्य पुस्तकें ऐसी बन गईं जो आदर्श मानी जाती हैं। इसके सिवाय उन्होंने इसी स्कूल के सम्बन्ध में एक पुस्तक यासनाया पोलियाना का स्कूल और यासनाया पालियाना नामक पत्र भी निकाला। यह पुस्तक शिक्षा में रुचि पूर्वक भाग लेने वालों के लिये अनमोल वस्तु है। पत्र में बहुत से महत्व पूर्ण शिक्षा सम्बन्धी लेख निकाले गये थे।

इस पुस्तक से एक अंश उद्धृत कर आशा की जाती है कि वह लोगों को रुचिकर होगाः—

"मैंने आधुनिक इतिहास पढ़ाने में कुछ प्रयोग किये। वे सभी बड़े ही सफल हुए। मैंने उनको क्रीमियन युद्ध, सम्राट निकोलस और सन् १८१२ का इतिहास सुनाया। मैंने ये सब रोचक कहानी के ढंग से कहे ऐसा करने में ऐतिहासिक दृष्टि से अशुद्धियां हो गईं। किन्तु प्रत्येक समय का इतिहास किसी एक व्यक्ति को मुख्य पात्र बना कर कहा गया था। नेपोलियानिक युद्ध के वर्णन में स्वभावतः ही बड़ी सफलता हुई।"

पत्र में जितने शिक्षा सम्बन्धी लेख निकलते थे वे सभी बड़े महत्व पूर्ण होते थे। एक लेख में उन्होंने सिद्ध किया है कि लिखना और पढ़ना ही शिक्षा की प्रथम सीढ़ी नहीं है और इसी कारण से वे शिक्षा के कोई आवश्यक अंग नहीं है ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो अपढ़ हैं किन्तु जिनका साधारण

ज्ञान अनुभव के कारण बहुत अधिक हो गया है और जिनमें लाभदायक ज्ञान भी विद्यमान है। फिर बहुत से ऐसे पढ़े लिखे लोग भी हैं जिनमें यह नहीं है। सरकार और देश के खूब पढ़े लिखे लोगों द्वारा स्थापित स्कूल सर्व साधारण के जीवन के अनुकूल नहीं है और न उनमें उनकी आवश्यकताओं के पूर्ण करने की कोई व्यवस्था ही है। प्रारम्भिक स्कूलों में विद्यार्थी हाई स्कूल दर्जों के लिए तैयार किये जाते हैं, हाई स्कूल में वे कालिज में प्रवेश करने योग्य बनाये जाते हैं और कालिज में वे इस योग्य बनाये जाते हैं कि वे सरकारी नौकरी और सरकार से सम्बन्ध रखने वाले अन्य कार्य विशेष योग्यता पूर्वक कर सकें। इन कालिजों, हाई स्कूलों और आरम्भिक स्कूलों में सर्वसाधारण की आवश्यकताओंको पूरी करने वाली शिक्षा नहीं दी जाती। इसका परिणाम यह होता है कि सर्वसाधारण इन स्कूलों से अप्रसन्न हो जाते हैं। पढ़े लिखे लोगों के मत तो अख़बारों द्वारा संसार को मालूम हो जाते हैं किन्तु महात्मा का कथन है कि "हम सर्व साधारण की आवाज़ पर ध्यान नहीं देते। हम उसको पहिले तो सुनतेही नहीं और यदि चाहें तो सुन भी नहीं सकते क्योंकि सर्वसाधारण की आवाज़ पत्रों या व्याख्यानों में नहीं सुनाई पड़ती। किन्तु जनता इस शिक्षा की विरोधी है।"

सर्वसाधारण की आवश्यकताओं की दृष्टि से उन्होंने रूस की वर्तमान शिक्षा प्रणाली को खूब जांचा है और उसकी बड़ी कड़ी समालोचना की है। उनके इन लेखों और समालोचनाओं के कारण दूसरे पक्ष के लोगों ने भी इनके लेखों की आलोचना आरम्भ की। इन विपक्षियों के कुल तर्क उन्नति

का सहारा लेकर स्थित हैं। यह देख कर उन्होंने 'उन्नति और शिक्षा' नामक एक बड़ाही ज़ोरदार लेख लिखा उन्होंने उन्नति के माने हुये अर्थ और उसकी निस्सारता को इस लेख में दिखलाया है।

बिवाह।

अपने शरीर की शक्ति से अधिक परिश्रम करने के कारण टाल्स्टाय का स्वास्थ्य बिगड़ गया किन्तु उनके शरीर में इतनी गड़बड़ी न थी जितनी कि उनके मन में थी। इस शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता को दूर करने के लिये वे वश्कीर चले गये। वहां उन्होंने कुमिस घोड़ी का उबाला हुआ दूध का सेवन आरम्भ किया। उस स्थान की स्वच्छ और स्वास्थकर वायु के कारण उनकी तबियत शीघ्रही ठीक होगई।

बश्कीर से लौटने पर टाल्स्टाय ने अपना बिवाह किया। उनकी पत्नी बेहर नामक राजवैद्य घराने की लड़की थी। वे उस घराने से पूर्व परिचित थे। अपनी भावी पत्नी और उनकी बहिनों को टाल्स्टाय उनके लड़कपन ही से जानते थे। छोटी बहिन सोफ़िया से उनका गाढ़ प्रेम होगया। सन् १८६२ ई० सितम्बर की २३ तारीख को उनका विवाह होगया। उस समय उनकी अवस्था ३४ वर्ष की और काउण्टैस की अवस्था अठारह वर्ष की थी। विवाहोपरान्त ये लोग यासनाया पालियाना में रहने लगे।

टाल्स्टाय ने सुख प्राप्त करने के सभी उपाय कर डाले

थे। उन्होंने यारों की संगत में सुख ढूंढ़ना चाहा, वह उन्हें वहां नहीं मिला। उन्होंने परिभ्रमण में सुख ढूंढ़ना चाहा, वहां भी वे निराश हुये। दासों की स्वतन्त्रता के समय उन्होंने पञ्च बनकर जनता की सेवा करनी चाही उसमें भी विघ्न उपस्थित हुये। उन्होंने बेपढ़े लिखे लोगों को पढ़ाना चाहा, और उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि अब उनको शान्ति प्राप्त होरही है, किन्तु उनका मस्तिष्क ठीक दशा में नहीं था। अब उन्होंने सुख को गार्हस्थ्य जीवन में खोजने का प्रयोग प्रारम्भ किया। अवश्य ही कुछ दिनों उनको शान्ति प्राप्त हुई किन्तु टाल्स्टाय का हृदय और मस्तिष्क इतना विकसित था कि इन सांसारिक बातों से उनकी शान्ति पिपासा बुझ नहीं सकती थी। विवाह के पन्द्रह वर्ष बाद उनके हृदय में एक बार फिर निराशा का संचार हुआ था और वे उसमें डूब गए थे। यह घटना यथा स्थान लिखी जायगी।

विवाह के बाद उन्होंने अपने आपको साहित्य सेवा में लगाया। यहां हम उनकी लेखन शैली और उनकी पुस्तकों की समालोचना नहीं करेंगे, यहां हम केवल एक उच्चकोटि के लेखक का विकाश दिखलाने का उद्योग करेंगे। इसी समय उन्होंने 'पालीकुश्का' नामक छोटा सा उपन्यास लिखा। इसके बारे में वे अपने मित्र फ़ेट को लिखते हैं:—

"मैं ऐसे स्थान पर रहता हूं ज़हाँ साहित्य संसार का पता नहीं है और जहाँ समालोचक हैं ही नहीं। इस कारण तुम्हारे पत्र को पाकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। 'पालिकुश्का' और 'कज़्ज़ाक' किसने लिखे हैं? और उनके बारे में क्या कहा जा सकता है? कागज़ बेचारे पर चाहे कुछ छापलो,

उसे कभी कोई आपत्ति नहीं होती, और प्रकाशक भी मेरे निस्सार लेखों को बेउज्र छाप देता है। किन्तु इन्हें सरसरी तौर से देखनेही से यह भाव पैदा होते हैं। जब मैं इनमें लिखे शब्दों के अर्थ पर विचार करने लगता हूं और जब मैं अपना मस्तिष्क टटोलने लगता हूँ तब बहुत से अर्थ और निस्सार बातों में लिपटी हुई मैं यह भावना पाता हूं जिसे लोग Artistic कह सकते हैं। + + + + + + इन निस्सार बातों से मुझे इतना उत्साह प्राप्त होता है कि मुझे लिखने की इच्छा होने लगती है। पालिकुश्का केवल एक साधारण गल्प है और केवल इस कारण लिखी गयी है कि लेखक को कलम का उपयोग करना आता है।"

इस समय इनकी कल्पनाशक्ति ख़ूब बढ़ रही थी। इसी समय इन्होंने सन् १८८५ ई० की १४ वीं दिसम्बर के आन्दोलन पर एक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास के लिखते समय उनको रूस और नेपोलियन के युद्ध के इतिहास का अध्ययन करना पड़ा। यह काल उन्होंने इतनी खूबी के साथ अध्ययन किया कि नेपोलियन का कुल इतिहास इनको हस्तामलक हो गया। अतःइन्होंने 'युद्ध और शान्ति' नामक विख्यात और उच्च कोटि का उपन्यास लिखना आरम्भ किया। यह उपन्यास बहुत बड़ा है, किन्तु महत्व में भी इसका आसन बहुत ऊंचा है। इस जीवनी के लेखक को उपन्यासों से अधिक प्रेम नहीं है, किन्तु पहिले पहिल केवल हिन्दी उपन्यासों के पढ़ने से— जिनमें न तो अच्छी कल्पना ने विकाश पाया है, जिनमें न किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है और जो सौ में निन्यानवे बिना किसी उद्देश्य के, केवल समय का ख़ून करते

के लिए लिखे गए हैं—उसको उपन्यासों से चिढ़ सी होगई थी, पर महात्मा टाल्स्टाय के इन उपन्यासों ने उपन्यासों के प्रति उसका यह भाव बदल दिया, तब से उसने अंग्रेज़ी, फ्रैञ्च और रूसी कितनेही उपन्यास पढ़ डाले किन्तु कई उपन्यासों (विशेष कर विक्टर ह्यूगो, डिकन्स, लिटन, कुरैली आदि के उपन्यासों) को छोड़कर टाल्स्टाय के उपन्यासों की बराबरी के उपन्यास उसने नहीं देखे। टाल्स्टाय के उपन्यासों में कुछ ऐसा अपनापन है कि वह दूसरों में नहीं पाया जाता। टाल्स्टाय ने एक लम्बे लेख में शैक्सपियर को 'अस्वाभाविक' बतलाकर और कई दोष लगाकर उनका आसन साहित्य संसार में नीचा करना चाहा है। टाल्स्टाय के उपन्यास पढ़ने से पहिले मैंने सोचा कि जो शैक्सपियर को अस्वाभाविक बतलाता है वह कितना स्वाभाविक होगा? मैंने जब उनका उपन्यास (युद्ध और शान्ति) पढ़ा तब बड़ी ही कड़ी आलोचक दृष्टि से काम लिया किन्तु उनके वर्णनों को इतना स्वाभाविक और जीवन से टक्कर खाते हुये पाया जितना कि और जगह पाना बड़ा ही कठिन है। उपन्यास लिखने से पहिले उन्होंने मसाला एकत्रित करने में और कथा गढ़ने में बड़ा ही परिश्रम किया। एक पत्र में उन्होंने लिखा है:—

"इस समय मेरा मन बड़े ही असमञ्जस में है। यद्यपि मैं आजकल कुछ नहीं लिखता तथापि बड़ी ही कड़ी मेहनत करता हूं। तुम इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि जिस खेत में मैं बोना चाहता हूँ उसका जोतना कितना कठिन है। मुझे बारम्बार यह सोचना पड़ता है कि मेरे उपन्यास के नायकों का क्या होगा। लाखों तरह की कल्पना उठती हैं और

इन लाखों कल्पनाओं से एक चुनना कितना कठिन है। आज-कल मैं इसी कठिन कार्य में लगा हूं।"

जब उपन्यास लिखा जा रहा था उस समय के एक पत्र का अंश देखिये–

"इस बार मैंने अपने उपन्यास में यथेष्ट उन्नति करली है। मैं नित्यप्रति विचार किया करता हूं। यदि मनुष्य जितना सोचता है उसका शतांश भी कर सकता तो कितना अच्छा होता, किन्तु वास्तव में लाखवां भाग ही उससे हो सकता है। तो भी लेखक को इस बात से प्रसन्नता होती है कि वह लिख सकता है। तुम स्वयं इस भावना से परिचित हो, इस साल मैं इस सुख का अनुभव खूब कर रहा हूं।"

अवश्य ही लिखना सहल नहीं है, किन्तु कठिन परिश्रम से लिखा हुआ लेख, लेखक को जितना आनन्द देता है वह केवल अनुभव ही किया जा सकता है, अंग्रेज़ कवि काऊपर ने कहा है 'There is a pleasure in poetic pain, which poets only know.' अर्थात् कवियों के कष्टों में भी एक प्रकार का विचित्र आनन्द है जिसका अनुभव कवि ही कर सकता है। यही हाल कुछ कुछ लेखकों का भी है। किन्तु इस प्रसन्नता मिले कष्ट के साथ ही टाल्स्टाय को उस समय एक सच्चा कष्ट हो गया। उन्हीं दिनों रीछ का शिकार करते समय उनके घोड़े ने उन्हें गिरा दिया और उनका दाहिना हाथ टूट गया। उस पीड़ा से वे बेहोश होगये। जब उन्हें होश आया तब उन्होंने देखा कि उनका घोड़ा भाग गया है। यद्यपि उस समय वे पीड़ा से बेचैन थे तथापि वे किसी तरह सरकते हुये सड़क तक (जो दूर थी) आये, वहां से कुछ

राहगीरों ने एक गाड़ी पर बैठा के उनको घर पहुंचाया। इस घटना के बारे में उन्होंने एक पत्र में लिखा है :—

"मैं तुमसे अपने बारे में कुछ आश्चर्यजनक बात लिखना चाहता हूं। जब घोड़े ने मुझे दे पटका और मेरा हाथ टूट गया, तब होश आने पर मैंने मन में कहा 'मैं साहित्यसेवी हूं' हां, मैं अवश्य ही साहित्य सेवी हूं किन्तु एकान्त और छिपे हुये स्थान में हूं।"

महात्मा कदाचित् भूलगये थे कि साहित्यसेवी का लिहाज़ पशु नहीं करते !

हाथ टूटने पर भी उन्होंने अपना कार्य बन्द नहीं किया किन्तु वे अपना उपन्यास बोलते जाते थे और उनकी साली उसे लिखती जाती थी। इस साल जो कि कहा जा चुका है, वे युद्ध और शान्ति नामक उपन्यास लिख रहे थे। इस उपन्यास को बहुत से विद्वान Russian epic रूसी महाकाव्य कहते हैं। वास्तव में यह नाम इसके लिये सर्वथा उपयुक्त है। इस उपन्यास का नाम पहिले '१८१५' रखा गया था, किन्तु बादमें बदल कर वह युद्ध और शान्ति कर दिया गया। उन्होंने ने इस उपन्यास के लिखने में बड़ा परिश्रम किया। इसके लिखे जाने में पूरे ६ साल लगे थे। इस पुस्तकके लिये मसाला एकत्रित करने के लिये उन्होंने ऐतिहासिक संग्रहालयों और सैनिक पुस्तकालयों को खूब छाना। उस समय के जो लोग जीवित थे, उनसे भी मिलकर उन्होंने बहुत कुछ मसाला एकत्रित किया। उन्होंने इसी उपन्यास में वर्णन करने के लिये बोरोडिनो के युद्ध स्थल देखने के लिये यात्रा की। सारांश यह है कि वे तन और मन दोनों से उसके लिखने में तल्लीन हो

गये। जब कभी वे अपने लेख से सन्तुष्ट होते तो कहा करते कि "आज मैं अपने जीवन का एक अंश अपनी दावात में छोड़ आया हूं।"

यह उपन्यास बहुत बड़ा है और क्रमशः निकला। जब इसका पहिला अंश निकला तब आलोचकों ने इस पर भिन्न भिन्न मत प्रकाशित किया। इस उपन्यासके प्रथम भागको देखने से इस पुस्तक के भावों के बारे में कुछ कल्पना नहीं की जा सकती। अतएव उन आलोचकों के मत ठीक नहीं थे इस पर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। इस पुस्तक के प्रकाशित होने से पहिले टाल्स्टायने अपने मित्र फ़ेट को लिखा था "तुम (जब यह पुस्तक प्रकाशित हो) अपनी सम्मति ब्यौरेवार लिखना। तुम्हारी तथा एक और व्यक्तिकी जिससे (टूर्गेनफ़) में अवस्था के बढ़ने के साथ अधिक प्रेम करता जाता हूं—सम्मति मुझे बहुत प्रिय है। वह मेरे आशय को समझ जायगा। जो कुछ मैंने अब तक लिखा है वह मेरी कलम के लिये तय्यारी के लेख थे। यद्यपि मैं इस पुस्तक को अपनी पुरानी पुस्तकों से अधिक पसन्द करता हूं तथापि यह भी मुझे अधिक रोचक नहीं मालूम पड़ती। उपन्यास का आरम्भिक भाग रोचक नहीं होता। यह बात बिलकुल ठीक थी। टूर्गेनफ़ भी इस पुस्तक के प्रारम्भिक भाग के पढ़ने से उसका मूल्य नहीं जान सके। इस पुस्तक का प्रचार धीरे धीरे हुआ किन्तु 'देर आयद, दुरुस्त आयद' वाली कहावत के अनुसार समय पाकर उसका प्रचार सर्व साधारण में ही क्या, संसार के साहित्य प्रेमियों और विद्वानों में इतना हो गया है जितना कि ऐसे पुस्तक के लिये सर्वथा उचित है।

इस पुस्तक में दो मुख्य नायक हैं। एक तो प्रिन्स ऐएड्री और दूसरे पियरी बैजूखी, वास्तव में तो नायक टाल्स्टाय ही की दो प्रकृति के दो भिन्न २ स्वरूप हैं। इन दोनों नायकों के चरित्र वास्तव में उनकी आत्मा के दो विवादों के परिणाम हैं। एक तो केवल बुद्धि और विचार को मानता है दूसरा आदर्श का पक्षपाती है। इन दोनों ही नायकों के प्रति पाठक की सहानुभूति हो ज़ाती है। एक की कड़ाई और दूसरे की कोमलता में विचित्र आकर्षण शक्ति है। इसमें जो प्रेम कथा वर्णित है—और जो दूश्रा प्रेम में पड़ी नायका नटाशा की दिखलाई गई है—उससे विदित होता है कि टाल्स्टाय को स्त्रियों के चिरन्तन प्रेम में सन्देह था। नटाश के प्रेम के दौरों को पढ़ते पढ़ते मुझे तो उससे एक बार अरुचि सी हो गई। सम्भव है मेरा भारतीय आदर्शों से भरा मस्तिष्क उस चित्र की ख़ूबी को न समझ सका हो। किन्तु सारी पुस्तक में प्रेम, ठगी, हताश और विकल मनोरथ सोनिया का आत्मोत्सर्गक चरित्र अवश्य ही बड़ा उपदेश जनक है। कम से कम मुझे तो उससे बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी।

प्रिन्सेस मेरिया का चरित्र भी बहुत ही स्वाभाविक है। उसमें स्त्री स्वभावोचित सरल विश्वास अच्छी तरह दिखलाया गया है। प्रिन्सेस मेरिया अपने भाई प्रिन्स ऐएड्री को समझा रही है। एक धनिक ने उसकी भावी पत्नी को उससे अलग करने का यत्न किया है और वह उसकी प्रेमिका के हृदय को उसकी ओरसे खींचने में सफल हुआ है। प्रेमिका ने उनको बहुत बुरा धोका दिया है। प्रिन्स के हृदय में बदले की अग्नि धधक रही है। प्रिन्सेस मेरिया कहती है।—"यह मत समझो कि लोगों ने

तुमको कष्ट दिया है। लोग तो केवल परमात्मा के हाथ के अस्त्र हैं। दुःख तो परमात्मा की भेजी हुई वस्तु है—इसे मनुष्य उत्पन्न नहीं कर सकता। मनुष्य केवल साधन हैं और इस कारण उनको दोष देना उचित नहीं है। यदि तुम्हें कोई व्यक्ति दोषी मालूम भी पड़ता हो, तो उसे भूल जाओ और क्षमा करदो। हमें दण्ड देने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसा करने पर तुम क्षमा करनेके आनन्द का अनुभव कर सकोगे।" किन्तु प्रिन्स ऐण्ड्री आपे में नहीं है। वे उत्तर देते हैं–"मेरिया! यदि मैं स्त्री होता तो क्षमा कर सकता था। क्षमा स्त्रियों का भूषण है। किन्तु मनुष्य न तो क्षमा कर सकता और न दोषों को भूल सकता है और न उसे ऐसा करना ही चाहिये।"

इसी में उन्होंने एक स्थान पर लिखा है: "किसी प्रिय व्यक्ति को हम मानवास्नेह से प्रेम कर सकते हैं, किन्तु शत्रु ही से स्वर्गीय प्रेम किया जा सकता है। मानवी प्रेम से मनुष्य प्रेम से घृणा में पहुंच सकता है, किन्तु स्वर्गीय प्रेम कभी बदल नहीं सकता। संसार में कोई भी वस्तु, यहां तक कि मृत्यु भी उसको नष्ट नहीं करती। वही आत्मा का तत्व है।,

इसके बाद ही जब उपन्यास का सर्व प्रिय नायक मरता है तब पाठक पर बड़ा ही अनोखा प्रभाव पड़ता है। मुझ पर तो उसका इतना प्रभाव पड़ा कि मेरे मुंहसे एकाएक निकल गया कि टालस्टाय ने प्रिन्स ऐण्ड्री की हत्या कर डाली। किन्तु साथ ही टालस्टाय के यह आश्वासनजनक वाक्य भी याद आए कि 'यदि संसारमें दुःख और विपत्ति न होती' तो मनुष्य अपनी शक्तिको परिमिति न जान सकता। उसे स्वयं अपने आपका बोध न होता। "मनुष्य जब तक मृत्यु से भयभीत

रहता है तब तक संसार में कुछ भी प्राप्त करने योग्य वस्तु प्राप्त नहीं कर सकता, और जो उससे नहीं डरता वह सभी वस्तुओं को पा सकता है"

किन्तु मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन के चित्र के सिवाय इस पुस्तकमें जो ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है वह बड़े महत्व का है, युद्ध का मानों सजीव चित्र आँखों के आगे फिर जाता है "इसबीस वर्ष के समय में असंख्य खेत बेजोते बोए पड़े रहे, अनगिनत मकान जला दिए गये, व्यापार नष्ट हो गया, लाखों मनुष्य चौपट होगये या अमीर हो गये, और लाखों ही ईसाई जो यह कहते हैं कि हम अपने सहवासी से प्रेम करते हैं, एक दूसरे के गले काटने में लगे थे।"

"जिन लोगों ने कभी एक दूसरे को देखा भी नहीं, जिनसे आपस का कोई द्वेष नहीं, वे पागलों की भाँति एक दूसरे को मार रहे थे।" वे पूछते हैं कि "इसका कारण क्या है? राष्ट्रों को कौनसी शक्ति संचालित करती है?" इतिहासवेत्ता कहते हैं इस सब बखेड़े का कारण नैपोलियन, अलेग्ज़एडर, कुटूज़ो इत्यादि हैं किन्तु महात्मा इससे सन्तुष्ट नहीं हैं वे कहते हैं कि राष्ट्रों का जीवन कुछ व्यक्तियों के जीवन में परिणित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इन व्यक्तियों का राष्ट्रों के साथ का सम्बन्ध अभी तक आविष्कृत नहीं किया किया जासका। "यह विवाद-ग्रस्त विषय महात्मा ने अच्छी तरह जांचा है और वे इन लोगों की बड़ाई का मुख्य कारण chance मौक़ा बतलाते हैं। अन्तमें वे कहते हैं कि इतिहास मनुष्य जीवन के अदृश्य नियमों के एक अंग का दिखावा मात्र है।"

साहित्यसेवी टाल्सटाय कभी भी उदारहृदय टाल्सटाय

को पीछे नहीं हटा सके। साहित्य सेवा के इस कठिन परिश्रम के समय भी वे लोगों की सेवा करने से नहीं चूकते थे। उनके और काम बराबर पहिले की भांति चले जाते थे। उस समय एक विचित्र शोक जनक घटना होगई। उनके गांव के पास एक रेजिमेन्ट पड़ा हुआ था। उसका अफ़सर बड़ा ही क्रूर हृदय था। सिपाहियों के साथ उसका बर्ताव एक पशु के समान था। शिकिनिन नामक एक सिपाहीसे यह बहुत अप्रसन्न था। यह सिपाही पढ़ा लिखा था और अपनी इच्छा से अपने एक मित्र को (जिसकी माता आदि उसी पर निर्भर थीं) फौज की नौकरी से छुटकारा देने के लिए उसके स्थान पर होगया था। एक दिन उस अफ़सरने इसे किसी तुच्छ बातपर मारा। यह सिपाही इस अपमानको न सह सका और उसने उस अफ़सर को ठोंक दिया। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि यह अफ़सर न तो सिपाहियों में और न अफ़सरों ही में प्रिय था। इस सिपाही के ऊपर अफ़सर के ऊपर हाथ उठाने का गम्भीर अपराध लगाया गया और वह कोर्ट मार्शल के सुपुर्द किया गया। लोगों ने इस बात का समाचार महात्मा टाल्स्टाय को दिया। टाल्स्टाय इस व्यक्ति की पैरवी करने के लिये खड़े हुये। कोर्ट मार्शल ने उनसे कहा कि आप एक सिपाही की, जिसने अपने अफ़सरके मारने का गहन अपराध किया है पैरवी नहीं कर सकते। किन्तु महात्मा ने कहा कि हम एक ऐसे व्यक्ति की पैरवी करने आये हैं जिसने क्रूर वर्ताव को सहन न कर सकने के कारण एक निर्दयी और अन्यायी व्यक्ति को अपने आपेसे बाहर होकर मार दिया है। किन्तु टाल्स्टाय की पैरवी से कोई लाभ नहीं हुआ। कोर्ट

मार्शल ने उसको गोली मार देने की आज्ञा दी। टाल्स्टाय ने उसके बचाने के लिये भरसक सभी प्रयत्न किये किन्तु वे सभी विफल हुये और उसको गोली मार दी गई। इस घटना ने उनके चित्त पर बड़ा गहरा प्रभाव किया। उन्होंने इस दण्ड को देने की प्रथा को जांचा। ईसाई धर्म भी इस दण्ड की पुष्टि करता था—उसका भी उन्होंने विचार किया। वे लिखते हैं—"मेरा तब भी यही विश्वास था कि यह दण्ड, यह इच्छा पूर्वक बध, ईसाई धर्म के—जिसको कि हम लोग मानते हैं—बिल्कुल विरुद्ध है। यह दण्ड ज्ञान-संगत जीवन और नैतिकता की सम्भावना को बिल्कुल ही मिटा देता है क्योंकि यदि एक व्यक्ति या कई एक व्यक्तियों की एक कमेटी इस बात का निर्धारण कर सकती है कि एक या अधिक व्यक्तियों का खूनकर डालना आवश्यक है, तो ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे ये व्यक्ति और लोगों को मारने का निश्चय न कर सकें। + + + + हां, इस मुकद्दमे ने मुझ पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव किया। उस समय मेरे हृदय में पहिले पहिल ये दो बातें आईं—ज़्यादती पूरी करने के लिये बध या बध की धमकी आवश्यक है और इस कारण सारी ज़्यादतियां अवश्य ही बधके साथ मिली हैं। दूसरे यह कि राज्य संगठन बिना बध के असम्भव है अतएव वह ईसाई धर्म के मतानुसार नहीं है।"

एनाकोरनिन काल

टाल्स्टाय का स्वास्थ्य कभी बहुत अच्छा नहीं रहा, उनके दो भाई क्षय रोग से मर गयेथे और इस बात का बड़ा भय था

कि कहीं उनको भी यह भयानक रोग न होजाय। सन् १८८१ ई० में उनका स्वास्थ्य फिर बहुत बिगड़ गया और उनकी श्रीमती ने उनसे अनुरोध किया कि वे एकबार फिर जलवायु परिवर्तन करने के लिये समारा जायं। वहां जाकर उनका स्वास्थ्य सुधर गया। वहां वे ग्रीक ग्रंथों का अध्ययन करते रहे।

समारा से लौटने पर उन्होंने फिर एक आदर्श स्कूल स्थापित किया। उसमें वे स्वयं और उनकी श्रीमती अध्यापक का कार्य करते थे। इसी के साथ उन्होंने आरम्भिक पाठशालाओं के लिये आन्दोलन करना फिर आरम्भ किया। कुछ पत्र और कुछ नेता भी इनके पक्ष में हो गये किन्तु इस आन्दोलन का कोई प्रत्यक्ष और तत्कालीन फल नहीं हुआ। इस आन्दोलन ने रूस के शिक्षा विभाग के अधिकारियों के हृदय पर बड़ा प्रभाव किया और जो आदर्श उनके आगे रखा गया उस पर उन्होंने विचार करना आरम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा रूस के आरम्भिक स्कूलों में पढ़ने में कम व्यय होने लगा हैं।

इस आन्दोलन के सिवाय उन्होंने एक आरम्भिक पाठ्य पुस्तक भी लिखी। यद्यपि यह पुस्तक शिक्षा विभाग ने स्वीकृत नहीं की किन्तु सर्वसाधारण को यह इतनी रुचिकर हुई कि इसकी लाखों प्रतियां बिक गईं।

हम कह आये हैं कि आधुनिक रूस के निर्माण की बड़ाई पीटर महान को मिलनी चाहिये। सारा रूस पीटर को अपने देश का सब से बड़ा शासक समझता है। टाल्स्टाय ने पीटर के बारे में अध्ययन किया किन्तु वे इतने निष्पक्ष थे कि पीटर

के बारे में उनकी सम्मति सर्वसाधारण की सम्मति से बिलकुल विपरीत थी।

किन्तु इसके बाद ही उन्होंने साहित्य सेवा को फिर प्रारम्भ किया। उस समय उन्होंने एक मित्र को लिखा था कि 'एना कोरनिन' नामक उपन्यास लिखने की मुझे बड़ी इच्छा है। अतएव उन्होंने इसे लिखना आरम्भ किया। समालोचकों का मत है कि यह उपन्यास टालस्टाय का सर्वोत्तम उन्पयास है। इसकी एक प्रत्यक्ष खूबी यह है कि यह 'युद्ध और शान्ति' की तरह बहुत बड़ा नहीं है। यह सामाजिक उपन्यास है और इसमें एक सुखी परिवार का वर्णन है। इसके पात्र लेविन का आध्यात्मिक विकाश कदाचित् सर्वोत्तम चित्र है। वह पहिले अहंवादी है, फिर संशयवादी हो जाता है अन्त में एक सरल किसान के साथ रहने से वह उसके सरल विश्वास से उत्पन्न सुख को देख एक उदार ईसाई हो जाता है। अन्त में वह इस सिद्धान्त पर पहुंचता है कि ईश्वर और अपनी आत्मा के लिये जीवन धारण करो।

टालस्टाय ने समारा में एक जायदाद खरीद ली थी। सन् १८७३ ई० में वे वहीं रहे। वहां रह कर उन्हें यह मालूम हुआ कि उस प्रान्त में एक अकाल पड़ने वाला है और यदि उसका प्रबन्ध पहिले ही से नहीं किया जायगा तो लोगों पर बड़ी भीषण विपत्ति पड़ेगी। उन्होंने देखा कि सरकार उसके रोकने का कोई उपाय नहीं कर रही। अन्त में उन्होंने गांवों में घूम घूम कर वहां की दशा जांची और वहां का कुल हाल 'मास्को गज़ट' में छपवाकर वहांकी सहायता के लिये अपील की। इसके साथ ही उन्होंने दर्बार के कुछ बड़े बड़े लोगों का ध्यान

इस ओर आकर्षित किया। उनके इस परिश्रम का परिणाम यह हुआ कि उन पीड़ित निवासियों के लिये बहुत सा अन्न और प्रायः दो लाख रूबल एकत्रित हो गये। कष्ट पीड़ितों को इससे बहुत कुछ सहायता मिली। उनके इस कार्य ने उनको सर्वप्रिय बना दिया।

सन् १८८२ की मर्दुमशुमारी

सन् १८८१ ई० में रूस की भीतरी राजनैतिक दशा बड़ी भयङ्कर थी। राजनैतिक संसार में एक तूफ़ान आया हुआ था और इसका परिणाम यह हुआ कि मार्च की तेरहवीं तारीख को हत्याकारियों ने ज़ार अलेग्जेण्डर द्वितीय को मारडाला। इस घटना ने रूस राष्ट्र में कम्प पैदा कर दिया। टाल्स्टाय पर इसका प्रभाव एक दूसरे ढंग से पड़ा। उन्होंने देखा कि हत्याकारियों ने ज़ार की हत्या करके ईसामसीह के उपदेशों को पददलित किया है और नए ज़ार अलेग्जेण्डर तृतीय हत्यारों का बध करके उन्हीं उपदेशों के विपरीत कार्य कर रहे हैं। किन्तु उन्होंने यह भी समझा कि दोनों ही पक्ष बड़ी भारी भूल में पड़े हैं और इस कारण उनके हृदय में दोनों पक्षों के लिये गहरी सहानुभूति उत्पन्न हुई। उसी समय उन्होंने नये ज़ार को एक लम्बा चौड़ा पत्र लिखा। उसमें उन्होंने उनसे अपराधियों को ईसामसीह की शिक्षा के निहोरे क्षमा कर देने की प्रार्थना की। उन्होंने लिखा कि निर्दय शासन और उदार सुधार दोनोंही का प्रयोग किया गया किन्तु दोनों ही विफल हुये। उन्होंने ज़ार को 'अक्रो-

धेन जयेत् क्रोधम् , असाधून् साधुना जयेत' वाली नीति के अनुसरण करने की सलाह दी किन्तु इस पत्र का उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। अपराधी फाँसी पर चढ़ा दिये गये।

उसी समय वे कुछ दिनों के लिये यासनाया पालियाना छोड़ मास्को चले गये। उस समय उनके हृदय में मनुष्य की समानता और मनुष्यजाति के प्रति प्रेम का भाव पूर्ण रूप से विकसित हो चुका था। अतएव मास्को में जाकर उन्होंने जो दशा देखी उससे उनके चित्त में बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने देखा नगर में एक स्थान में दो तरह के व्यक्ति हैं। एक तो वे हैं जिनके पास आवश्यकता और उड़ाने के लिये जितना धन चाहिये उससे भी अधिक है दूसरे वे हैं। जिनके लिये भोजन का भी ठिकाना नहीं है। उन्होंने देखा कि प्रत्येक स्थान पर भूँख से तड़पड़ाते बालक और वृद्ध हाथ फैला रहे हैं और उनको कुछ नहीं मिलता, साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि आलीशान होटलों में वे लोग बढ़िया से बढ़िया भोजन उड़ा रहे हैं जिनको अपने लिये भोजन पैदा करने के लिए कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। उन्होंने देखा कि गाड़ियों के स्वामी तो रूसके शीतकाल में रात के समय गर्म थियेटरों में गाना सुन रहे हैं और तमाशा देख कर प्रसन्न हो रहे हैं किन्तु उनके साईस और कोचवान बाहर जाड़े में ठिठुरे जा रहे हैं। दरिद्रों के कष्टों को देख कर उनका कोमल चित्त अत्यन्त दुखी हो गया। उसी समय मास्को नगर में मर्दुम-शुमारी की तय्यारी की जा रही थी। उन्होंने दरिद्रों की दशा को जाँचने और देखने का बड़ा अच्छा अवसर समझा। यही नहीं उन्होंने मास्को सभ्य समाज से प्रार्थना की कि वे इस

अवसर को हाथ से न जाने दें और दरिद्र तथा दुखियों की दुर्दशा अपनी आँखों से देख कर उनके साथ दया का वर्ताव करें, वे इसके बारे में लिखते हैं :—"मैं उन लोगों का नाम संग्रह करने लगा जो इस कार्य (मर्दुमशुमारी) में भाग लेने के लिये तैयार थे, इसके साथ ही मैं उन लोगों की भी फेहरिस्त बनाता था जो इन लोगों के साथ दरिद्रों की कुटियों में जाकर उनकी दुर्दशा देखने के लिये और उनकी आवश्यकताओं को जानने के लिये, उनको काम और धन देकर सहायता देने के लिए, उनको इस नगर से बाहर भेज देने के लिये, उनके बच्चों को स्कूल में भर्ती कराने और वृद्ध स्त्री पुरुषों को किसी दरिद्रालय में भेजने के लिये तैयार हों। मैंने सोचा था कि इन काम करनेवाले लोगों की भविष्य में एक संस्था बनाऊँगा जो दरिद्रता को जड़ से उखाड फेंकने का उद्योग करैगी। यह उद्योग दरिद्रता को नष्ट करनेसे नहीं किन्तु उसको रोकने से पूरा होगा। + + + तब कहीं धनिक लोग आनन्द पूर्वक रह सकेंगे।' किन्तु मास्को के धनी, सरकारी नौकर और नागरिकों ने इस अवसर का सदुपयोग नहीं किया। उस समय उन्होंने स्वयं दरिद्रों की दशा का अनुभव कर लिया था और वे उस दुर्दशा को आँख रहते अंधे धनिकों को दिखलाना चाहते थे। महात्मा व्यायाम के निमित्त मास्को से दो या तीन मील स्पेरो हिल नामक स्थान पर जाया करते थे और वहाँ दो लकड़ी चीरने के आरा चलानेवालों के साथ काम करते थे, उनके साथ काम करने का उद्देश्य केवल उनकी दशा में रहकर उनकी अवस्था को जानने का था। वहां आकर उन्होंने मालूम किया कि गाली बकने और कसम खाने की

बुरी लत इन लोगों में इस दशा में रहने के कारण हो गई है। अन्त में उन्होंने मास्को की म्युनिसिपैलटी से मर्दुमशुमारी में काम करने के लिये आवेदन किया। उन्होंने नगर के सब से दरिद्र और गिरे भाग में काम करने की अनुमति माँगी। उन्होंने मास्को के गिरे से गिरे और दरिद्र से दरिद्र भाग में जाकर देखा कि जहां वे स्वयं सुख और आनन्द के साथ रहते हैं वहां ही लोग भूख से तड़पते हैं—गंदे मकानों में रहते हैं—नैतिक जीवन में बिलकुल गिरे हुए हैं. "और यह सब किसके पापों का फल है"? "यह हमारे पापों का फल है। हम (धनिक) सांसारिक, बेकाम और विलास पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, और इसी कारण हम उनको वह सच्ची सहायता—नैतिक रूप से जीवन व्यतीत करने का आदर्श और भ्रातृ भाव—नहीं दे सकते क्योंकि वे हमको अपने से भिन्न समझते हैं, हमको घृणा की दृष्टि से देखते हैं, हम उनकी पर्वाह नहीं करते—उनको तुच्छ समझते हैं; इस अवस्था में उनको सहायता देना असंभव है।'

इस मर्दुमशुमारी में उन्होंने जो अनुभव किए उनको लेकर उन्होंने एक पुस्तक लिखी है "तो अब हमें क्या करना चाहिये?' उसमें उन्होंने दरिद्रों की दशा का वर्णन भली भांति किया है। वे दरिद्रों की दशा और उनके घरों की करुणापूर्ण अवस्था देख कर लौटे हैं, आगे वे लिखते हैं :—

"जब मैं घर लौटा तब मुझे ऐसा मालूम होता था कि मैं कुछ अपराध करके आ रहा हूं। मैं गलीचे से ढकी सीढ़ियों से होकर कमरे में घुसा जिसमें बहुमूल्य कालीन बिछा हुआ था। मैं अपना बहुमूल्य 'फ़र' का कोट उतार कर भोजन करने बैठा,

मेरे भोजन में नाना प्रकार के व्यञ्जन थे, दो ख़ानसामा—जो वर्दी पहिने हुए थे और सफ़ेद टाई लगाए हुए और सफ़ेद दस्ताने पहिने हुए थे-मेरे लिये भोजन ला रहे थे।

"और इनको देखते ही मेरी आंखों के सामने पिछले समय का चित्र सहसा उपस्थित हो गया। तीस साल हुए मैंने हज़ारों लोगों के सामने एक व्यक्ति का सिर कटते देखा था। मैं इसे जानता था कि वह व्यक्ति बड़ा अपराधी था। मुझे वे सब तर्क मालूम थे जो इस प्रकार के दण्ड देने के पक्ष में कहे जाते थे। मैंने देखा कि उसका सिर जान बूझकर काटा जा रहा है। किन्तु जैसे ही मैंने देखा कि तेज़ धारवाले फल ने उसका सिर अलग कर दिया, मेरी दम घुटने लगी और मुझे मालूम हुआ कि जो तर्क अभी तक मुझे मालूम थे, वे वास्तव में बिलकुल ही निस्सार थे। + + + और मुझे मालूम हुआ कि मैं चुप चाप रहने और इस काम में बाधा न देने के कारण इस पाप में सहायता देने वाला हूं। इस पाप की उन्नति करने वाला हूं और पाप का भागी हूं, उसी प्रकार के भाव इस समय भी मेरे मन में उदय हुए। मैंने दरिद्रता के कष्ट देखे, भूख की वेदना देखी, सर्दी का कष्ट देखा, और अपने समान हज़ारों मनुष्यों को पतित अवस्था में देखा और मैंने यह भलीभांति समझ लिया कि मैं अपने विलास पूर्ण और सुख से जीवन व्यतीत करने के कारण इस बुराई को बढ़ाने-वालों में हूं।"

इस विषय के ऊपर उन्होंने खूब विचार किया। वे बहुधा अपने मित्रों के साथ इस विषय पर बात चीत करते थे। इस बात चीत को करते करते उनमें इतना जोश आ जाता था कि

कभी कभी वे चीखने लगते थे। एक दिन वे अपने किसी मित्र के साथ इस विषय पर बात चीत कर रहे थे। बात करते २ जोश में आकर वे चिल्लाने लगे। उनकी स्त्री चिल्लाहट सुनकर उनके कमरे में दौड़ आई। उस समय वे कह रहे थे—"हमको अपना जीवन इस प्रकार व्यतीत न करना चाहिए, हमें इस प्रकार रहने का कोई अधिकार नहीं है, हमको जीवन का यह क्रम छोड़ना पड़ेगा।" उनकी आवाज़ उनके अनजान ही में इतनी बढ़ गई थी। इस पर लोगों ने उनसे कहा कि तुम तो बहस में गर्म हो जाते हो, तुम आपे में नहीं रहते, तुम किसी विषय पर शान्त रूप से विचार नहीं कर सकते। यदि और लोग दुखी हैं तो अपने घरेलू जीवन के सुख में दुख मिलाना बुद्धिमता नहीं है। किन्तु कदाचित् वे लोग यह नहीं जानते थे कि वही व्यक्ति किसी विषय की सच्ची खोज कर सकता है और कुछ काम कर सकता है जिसमें ये गुण हों।

अतएव उन्होंने इन दुर्दशाओं के ऊपर विचार करना आरम्भ किया। उन्होंने यह परिणाम निकाला कि जब तक समाज में घोर परिवर्तन न होगा तब तक कोई सुधार सम्भव नहीं है। उन्होंने यह स्थिर किया कि इन लोगों की भिन्न २ आवश्यकताएं हैं और उनको केवल खिलाने और कपड़ों का प्रबन्ध कर देने ही से यह प्रश्न हल न हो जायगा। उन्होंने कहा कि दुर्दशाग्रस्त लोगों की तीन मुख्य श्रेणियां हैं। १—वे लोग जो काम नहीं करते या जिन्हें कोई काम नहीं मिलता २—ख़ानगी स्त्रियां ३—बच्चे। उन्होंने तीनों के लिए तीन औषधियां बतलायीं। उन्होंने कहा कि प्रथम श्रेणी के लिए दान और

दया की अधिक आवश्यकता नहीं है—उनको स्वाभाविक परिश्रम करने की शिक्षा देने की आवश्यकता है। दूसरी श्रेणी के लिए पवित्र जीवन के महत्व की शिक्षा देने की आवश्यकता है और इसीसे उनके जीवन में परिवर्तन हो सकता है।

टालस्टाय इस सम्बन्ध में रुपए को बहुत बड़ी बुराई समझते थे। उनका मत था कि समाज में जो बुराइयां फैली हैं उनका मुख्य कारण रुपया है। वे कहा करते थे कि रुपया एक तरह का दबाव है जो सरलता से दूसरे पर डाला जा सकता है। हमारे समाज का वर्तमान संगठन अस्वाभाविक और मिथ्या है और ऐसे ही सिद्धान्तों पर वह स्थिर है। 'तो अब हमें क्या करना चाहिये' नामक पुस्तक में उन्होंने इस समस्या की खूब छान बीन की है, और अन्त में उन्होंने यह प्रश्न हल करते हुए कहा है:—अपने किए पर पश्चाताप करो, अपने ज़ीवन का नवीन संगठन करो, अपने लाखों रुपयों के ख़ज़ाने से एक आध पैसा या रुपया ग़रीबों को चाहे न दो क़िन्तु उनके कष्टमय और परिश्रमी जीवन में भाग लो।

इसीके अनुसार उन्होंने अपना ज़ीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। उन्होंने अपना दिन चार भागोंमें बांटा। पहिले भाग में वे अपना मानसिक कार्य करते थे, दूसरे में कठिन शारीरिक परिश्रम करते थे, तीसरा भाग छोटी मोटी कारीगरी आदि में व्यतीत होता था और चौथा भाग लोगों के साथ मिलने और उनकी दशा देखने में जाता था। उन्होंने स्वयं अपना क्रोध रोकना आरम्भ किया, वे सब लोगों के साथ नम्रता और विनय पूर्वक मिलने की आदत डालने लगे, वे

अपने गर्व को तोड़ने का उपाय करने और सारी दुर्वासनाओं से छूटने के लिये उद्योग करने लगे। उन्होंने अपने जीवन का क्रम बदल दिया।

नगर का जीवन उनकी प्रकृति के अनुकूल न था। अतएव वे यासनाया पालियाना चले गये। उनके नवीन प्रकारके जीवन का समाचार दूर दूर लोगों में फैल गया और हार्दिक परोपकारी उनके आसपास जमा होने लगे।

यहाँ आकर उन्होंने सर्व साधारण के मनोरंजन और शिक्षा के लिये गल्प साहित्य लिखना आरम्भ किया। यह साहित्य इतनी सरल भाषा में लिखा गया है कि उसमें एक शब्द भी इधर उधर करने का स्थान नहीं है। उनके कई एक अनुयायियों ने 'पास रेडनिक' नामक एक प्रकाशन-समिति स्थापित की और उनके द्वारा वे अपनी कहानियाँ प्रकाशित करते रहे। इन पुस्तकों की मांग सुनकर आश्चर्य करना पड़ता है। उनकी प्रत्येक पुस्तक की आवृति १४००० प्रतियों की होती थी और साल में ऐसे पांच संस्करण होते थे। चार सालमें इस समिति ने टाल्स्टाय की कहानियों की १२०००००० (एक करोड़ बीस लाख) प्रतियां बेचीं। इन पुस्तकों का 'कापी राइट' नहीं कराया गया था, इसलिये और भी कितने ही लोगों ने इन पुस्तकों को छपवाया और बेचा जिनकी संख्या नहीं कूती जा सकती। पीछे से यह समिति टाल्स्टाय के तत्वावधान में रूस के अन्य लेखकों की लिखी सर्व साधारण के योग्य कहानियां प्रकाशित करने लगी थी। इस समिति ने रूस के बड़े बड़े ग्रंथकारों के सर्व प्रिय संस्करण निकाले और बड़े बड़े चित्रकारोंके चित्र भी प्रकाशित करने लगी। इन चित्रों के

लिये कहानियां या तो महात्मा स्वयं लिखते थे या उनका संपादन कर देते थे।

इन साहित्यसेवाओं के बीच में उन्होंने अपने जीवन का क्रम नहीं बदला। मास्को में वे बहुधा गरीबों के साथ लकड़ी काटते, पानी भरते और जूता बनाते थे। वे स्वयं अपना बनाया जूता पहिनते थे। वसन्त ऋतु के आरम्भ में वे यास-नाया पालियाना लौटते थे। वे अपनी गठरी अपनी पीठ पर देहातियों की तरह डाल लेते थे और पैदल ही यात्रा करते थे। गाँव में वे बहुधा पेड़ों को काटा करते और लकड़ी को वे अनाथों और विधवाओं तथा दरिद्रों को दे दिया करते थे और वे सदा दरिद्रों की सहायता करने को तय्यार रहते थे और कभी कभी उन्हें इसके लिये कष्ट भी उठाना पड़ता था। एक बार वे भुस बनाने में लगे थे। गाड़ी में चढ़ते समय उनके घुटने में बड़ी गहरी चोट आगयी। जब उनका दर्द कम हो गया तब उन्होंने उसकी बिलकुल पर्वाह न की। कुछ दिनों बाद उसमें सूजन आगई और पीछे से इस घाव का असर हड्डी पर पहुंचने लगा। अतएव उनको उसे चिरवाना पड़ा। इसके कारण वे प्रायः एक महीने तक खाट पर पड़े रहे। उस अवस्था में भी वे खाली न थे। उन्होंने उस बीमारी में 'अन्धकार की शक्ति' नामका प्रसिद्ध नाटक लिखा।

टाल्स्टाय बड़े भारी कोविद थे। हम इसलिये उनका इतना आदर नहीं करते। टाल्स्टाय बड़े भारी दार्शनिक थे। इस कारण भी हमारे हृदय में उनका स्थान इतना ऊंचा नहीं है। टाल्स्टाय महात्मा थे। एक रूसी काउण्ट होकर भी वे अपना जीवन दरिद्र किसानों की तरह व्यतीत करते, उनके दुखमें

दुखी होते थे, मनुष्य मात्र से प्रेम करते थे। इसी कारण हमारे हृदय में उनके लिये इतना आदर और इतनी भक्ति है।

"मान योग्य नहिं होत कोऊ कोरो पद पाए
मान योग्य वे नर जे केवल परहित जाए।"

टाल्स्टाय के प्रभाव की वृद्धि

गोस्वामी तुलसीदास जी कह गए हैं कि 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे।' और यह कथन बहुत ठीक है भी। किन्तु गोस्वामी जी यह नहीं कह गये कि ऐसे व्यक्ति हैं हो नहीं हैं सही,–लेकिन बहुत कम। और जो इस साँचे के मनुष्य हैं उनका आदर भी संसार में कम नहीं होता। संभव नहीं कि आगमें गर्मी न हो और उसकी झरप आस पास वाले लोग अनुभव न कर सकें। महात्मा टाल्स्टाय का जीवन भी इसी प्रकार का था। उस कोयले में जलने की शक्ति थी। जब वह जलने लगा, जब उसने अपने आपको दूसरों के लिये भस्म करना आरम्भ किया, तब जो महान आत्मा का तेज निकला वह अर्ध-शिक्षित रूस के अन्दर ही न रह गया किन्तु उसका अनुभव यूरोप और अमरीका के समझदार लोगों ने भी करना आरम्भ किया। रूस में वेही पुस्तकें प्रचलित होसकती हैं जिनको सेंसर पास करदे और उसी अवस्था में वे छापी जा सकती हैं। सो रूस में उनके दार्शनिक, धार्मिक और सामाजिक निबन्ध छपना बड़ा मुश्किल था। वहां लोग उनके ग्रन्थों की हस्तलिपियों या लीथो से छपे ग्रन्थों ही पर सन्तोष करते थे किन्तु रूस से

बाहर अन्य यूरोपियन स्वतन्त्र देशों में उनके ग्रन्थ धड़ाके के साथ प्रकाशित होते थे। जिनेवा, लंदन, बर्लिन और पैरिस में उनके ग्रन्थों का अनुवाद होने और इन अनुवादों का प्रचार पढ़े लिखे लोगों में बहुतायत से बढ़ने लगा। उन्होंने अपने पिछले ग्रन्थों के छापने का अधिकार सब को दे रखा था अतएव उनकी कई पुस्तकें लोग बड़े आग्रह से छापने लगे।

यों तो उनके उपन्यासों और कहानियों का अनुवाद कई भाषाओं में हो चुका था किन्तु पश्चिमी यूरोप के लोगों ने अनुवाद की कठिनाइयों के कारण उनका सौन्दर्य ठीक ठीक तरह से नहीं समझा था। वे उनको मनोरञ्जक तो भले ही समझते थे किन्तु उन उपन्यासों के तत्वों को समझने में वे असमर्थ थे। अन्त में प्रिन्स लिओनाइड उरुसाफ़ ने पैरिस में उनके धार्मिक निबन्ध 'मेरा धर्म क्या है?' का अनुवाद निकाला। इसके बाद उनके धार्मिक और दार्शनिक निबन्धों के अनुवाद इङ्गलैण्ड और जर्मनी में निकलने लगे। इन पुस्तकों के कारण लोगों की सहानुभूति उनके प्रति होने लगी और वे उनके भावों को जानने लगे।

इसका परिणाम यह हुआ कि सभ्य संसार के प्रत्येक देश से उनके पास लेख, पुस्तक, समाचारपत्रादि आने लगे। जिसका मत उनके मत से टक्कर खाता वही उन से सम्मति माँगता। बहुत से लोगों को तो उनके निबन्धों को पढ़कर उनके दर्शन करने की लालसा हुई। जब वे लोग उनके दर्शन करने आने लगे और अपनी आंखों से देखने लगे कि वे जो कुछ कहते हैं उसको करते भी हैं—वे अपना जीवन

निष्काम परोपकार में व्यतीत कर रहे हैं—तब उनकी श्रद्धा उनके प्रति और भी बढ़ जाती। जब उनके जीवन की कहानी समाचार पत्रों में छपने लगी और वे मनुष्यमात्र के प्रेमी के नाम से प्रसिद्ध होगए, तब उनकी सम्मति का वजन लोगों पर बहुत अधिक पड़ने लगा और वे कोविद् और विचारवान लोगों के मण्डल में एक मुख्य व्यक्ति होगए। उनका प्रभाव यहाँ तक बढ़ा कि स्वयं रूस के निरंकुश ज़ार भी उनको एक प्रभावशाली व्यक्ति समझने लगे। खुफ़िया पुलीस उनके पीछे लगी रहती थी। उनकी पुस्तकों के प्रचार करनेवालों को सज़ा मिलती थी, किन्तु स्वयं टाल्स्टाय पर हाथ उठाने का साहस सरकार को नहीं होता था। एक स्त्री को उनकी एक हस्तलिखित पुस्तक का प्रचार करने के कारण जेल की सज़ा मिली। वहाँ वह जेल की पीड़ा से प्रायः पागल होगई। महात्मा ने उसके छुटकारे के लिये बहुत उपाय किये। अन्त में उन्होंने कहा कि सरकार इन पुस्तकों के प्रचार करनेवालों को सज़ा क्यों देती है। उनका लिखनेवाला तो मैं हूँ। वह मुझे दंड क्यों नहीं देती?

संसार का नियम है कि उग्र उपायों के बाद लोगों को साधारण उपायों के अवलम्बन करने का विचार होता है। जब ज़ार अलैग्ज़ैण्डर द्वितीय की हत्या उग्र आन्दोलनकारियों ने करडाली और देखा कि उसका अच्छा फल होने के बजाय फल बिल्कुल विपरीत हुआ तब उन लोगों को समाज के पुनर्सङ्गठन का उपाय करने के लिए दूसरे ढंगों का अन्वेषण करना पड़ा। और जैसा कि इस अवस्था में बिल्कुल ही स्वाभाविक है रूस के नवयुवक केवल राजनैतिक उदार

सुधारों की पर्वाह न करके समाज के नैतिक और धार्मिक अङ्गों की ओर झुके। इन लोगों के विचार महात्मा टाल्स्टाय के विचारों से बहुत कुछ मिलते थे और वे इन्हींको अपना नेता समझने लगे। इस नवीन आन्दोलन के फलस्वरूप कितने ही धनाड्य और भले घर के लोग दरिद्र किसानों के साथ रहने लगे और कितनोंही ने सेना में सेवा करने की शपथ करने से इन्कार करदिया। तभी से उस प्रसिद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध का नया ढङ्ग, उनके तत्वावधान में, आरम्भ हुआ जिसने संसार में इतनी स्थिति पाई और हमारे देश के गौरव स्वरूप दक्षिणी अफ्रीका प्रवासी भाइयों ने, महात्मा गांधी के नेतृत्व में जिसका अवलम्बन कर, हमारे देश के राजनैतिक और नैतिक इतिहास में एक नयाही युग उपस्थित करदिया है।

इस निष्क्रिय प्रतिरोध की नवीन शिक्षा ने रूस में और रूस के बाहर महात्मा के लिए नया और उच्च स्थान लभ्य करदिया। अन्य देशों की सभा सोसाइटियों ने टाल्स्टाय के इस उपाय से सहानुभूति प्रकट करनी आरम्भ की। पहिला सहानुभूति सूचक सम्वाद इङ्गलैंड के क्वेकर्स ने भेजा। अटलाण्टिक महासागर के उस तट पर भी महात्मा का यह नवीन सिद्धान्त लोगों ने बड़े आनन्द के साथ सुना। क्वेकर्स नामक सम्प्रदाय विशेष और हैरिसन और बाल द्वारा हाल ही में स्थापित निष्क्रिय प्रतिरोध समितियों ने उनके पास हार्दिक सहानुभूति के संदेसे भेजे। आस्ट्रिया से 'नाज़रीन' नामक समाज ने उनके पास समर्थन सूचक पत्र भेजा। इस समाज के लोग सैनिक सेवा करने से इङ्कार करते हैं और तदनुसार उनको जेलकी दण्डाज्ञा भी अक्सर मिला करती है।

इस स्थान पर हम सैनिक सेवा के बारे में कुछ पंक्ति लिख देना आवश्यक समझते हैं। यूरोप में, जहां के देश इस समय राजनैतिक विकाश कर रहे हैं और दूसरे देशों को विजय कर रहे हैं, सेना की आवश्यकता बहुत अधिक रहती है। किन्तु इस अधिक आवश्यकता के साथ ही कुछ उदार स्वभाव के व्यक्ति युद्ध को अमानुषिक और ईश्वर की आज्ञाके प्रतिकूल कहते हैं। इनमें से जो लोग अपने सिद्धांत पर दृढ़ हैं वे सैनिक सेवा से इंकार कर देते हैं और निष्क्रिय प्रतिरोध का अवलम्बन करते हैं। किन्तु वहां के कानून के अनुसार सेना में सेवा न करनेवालों को सज़ा मिलती है।

उसी समय उदार विचारवाले बहुत से लेखक, कवि और चित्रकार उनके आस पास एकत्रित होनेलगे। इनमें दो चित्रकार—गे और रेपिन—बहुत प्रसिद्ध हैं। रेपिन रूस का सर्वोत्कृष्ट चित्रकार समझा जाता है। इन दोनोंही ने महात्मा के बहुत से चित्रबनाये हैं। गे का बनाया 'टाल्स्टाय अपने अध्ययनागार में' और रेपिन का खींचा 'टाल्स्टाय हल चलाते हुये'—नामक दो चित्र बहुत प्रसिद्ध हैं। इस अन्तिम चित्र का महत्व बहुत अधिक है। इसका अर्थ बहुत गम्भीर और विचारणीय है। इसमें रूसके सर्वश्रेष्ठ महानुभाव को रूस के किसानों और पृथ्वी से मिलाकर चित्रकार ने एक बड़ा ही भाव पूर्ण आशय निकाला है।

अमरीका, इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस इत्यादि देशों के लोग उनके दर्शन करने को आते थे। बहुतों के विचार उनसे नहीं मिलते थे। टाल्स्टाय ने इसका कारण खोजना आरम्भ किया। उन्हें पता लगा कि उन लोगों का और उनका निज का विचार

जीवन के बारे में भिन्न है और इसी प्रारम्भिक विचार की भिन्नता के कारण बहुधा लोगों के विचार उनसे टक्कर नहीं खाते। अतएव उन्होंने 'जीवन पर' नामक एक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने अपने जीवन सम्बन्धी दार्शनिक विचारों का वर्णन किया है।

इस पुस्तक में महात्मा ने उन अवस्थाओं का वर्णन किया है जिनमें रह कर मनुष्य का पुनर्जीवन आरम्भ होता है। प्रत्येक समझदार व्यक्ति यह जानता है कि व्यक्तिगत सुख की इच्छा करनेवाले मनुष्य को सुख के पाने का उद्योग करते समय उन दूसरे आदमियों से झगड़ना पड़ता है जो उसी की तरह सुख पाने के लिये मेहनत कर रहे हैं। और इस सुखके लिये झगड़ने से उसके मन को शान्ति नहीं मिलती किन्तु उसकी सुख प्राप्त करने की शक्ति नष्ट होजाती है। और यदि उसे सुख का एक कारण मिल भी जाता है तो भी वह उससे शीघ्र ही असन्तुष्ट होजाता है क्योंकि वह जानता है कि यह सुख केवल क्षणिक है। जितना ही अधिक वह जीवन के वर्तमान सुख पर विचार करता है उतना ही अधिक वह उस सुख के सांसारिकपन पर विचार करता है और यह विचार उसे उस सुख का उपभोग नहीं करने देता। और यदि वह इस भुलावे में आ भी जाय कि यह सुख क्षणिक नहीं है और यह जड़सुख ही सच्चा सुख है, तो भी वह यह नहीं भूल सकता कि मृत्यु उसके सिर पर सदा प्रस्तुत खड़ी रहती है और वह चाहे जिस समय उसे समाप्त कर सकती है और मृत्युके आते ही इस सुख की माया का अन्त हो जायगा। इससे छुटकारे का कोई उपाय नहीं है और जो जीवन की शक्ति बच भी रहती है वह

इस असम्भव परस्पर विरोधी जीवन को समाप्त करने के लिये यथेष्ट है।

इससे मुक्ति पाने का केवल एकही उपाय है। जड़ सुखों को छोड़ देने, पुनर्जन्म लेने और प्रेम को जीवन का सिद्धान्त बना लेने से ही यह मुक्ति प्राप्त हो सकती है। प्रेम का तात्पर्य उस शारीरिक प्रेम से नहीं है जिसके द्वारा हम एक को दूसरे से अधिक अच्छा समझते हैं, किन्तु प्रेम से उसका मतलब है जिसका उद्देश्य दूसरों की भलाई है और जिसका मुख्य सिद्धान्त अपनी हानि करके और स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों की सेवा करने का है। प्रेम, सुखके लिये इस झगड़े का अन्त कर देता है और परिणाम में एक दूसरे की सहायता करने और दूसरों के सुख का ध्यान करने की सहायता देता है। प्रेम का साम्राज्य अनन्त है, उसमें मायावी भुलावे नहीं है और उसमें शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति का साधन भी नहीं है क्यों-कि नैतिक सुख हमारे शरीर से भिन्न है। प्रेम मृत्यु का भय नहीं करता, क्योंकि जो प्रेम का उद्देश्य (दूसरों की सेवा) है वह अमर है और यदि उसके सहचरों में से एकाध व्यक्ति गिर भी पड़े तो भी उसका बिगाड़ नहीं हो सकता। प्रेम अपने स्वभाव के कारण मनुष्य को अनन्त तत्व से मिला देता है।

महात्मा इसी प्रकार जीवन के सुखों की जाँच करते हैं और मृत्यु के भय को मिथ्या प्रमाणित करते हैं और अन्तमें कहते हैं कि मनुष्यको जिस वस्तु की आवश्यकता है वह उसे दी गई है। वह आवश्यक वस्तु मृत्यु रहित जीवन और कष्ट रहित सुख है।

जीवन की इस व्याख्या लिखने के बाद महात्मा ने मनुष्य

जाति की सामाजिक और व्यक्तिगत बुराइयों की ओर ध्यान देना आरम्भ किया। यह कहा जा चुका है उन्होंने तम्बाकू, मांस आदि खाना छोड़ दिया था। अब उन्होंने इन बातों का प्रचार करना आरम्भ किया। उन्होंने तम्बाकू पीने, शराब पीने, मांस खाने आदि के विरुद्ध एक लेख माला निकालनी आरम्भ की। 'मनुष्य नशा क्यों करते हैं ?'' इस लेख में उन्होंने नशे के बारेमें बहुत कुछ लिखा है। शाकाहार के बारे में उनका मुख्य निबंध 'प्रथम पद' है। इसके सिवाय उन्होंने मादकद्रव्य निवारिणी सभा भी स्थापित की थी। जो व्यक्तिइस सभा के सभासद होना चाहते थे उन्हें इस फ़ार्म पर हस्ताक्षर करने पड़ते थेः—

"शराब पीने की बुराईयाँ को भली भाँति समझकर मैं यह निश्चय करता हूं कि भविष्य में न तो मैं किसी भी प्रकार का मादक द्रव्य, वाडका (रूसी शराब) शराब या बियर पियूँगा और न उसका क्रय विक्रय करूंगा। मैं भरसक दूसरों कोइसके दुर्गुणों को समझाने का प्रयत्न करूंगा और विशेष कर नवयुवाओं और बालकों को मादक वस्तु सेवन से रहित जीवन के गुणों को समझाने का प्रयत्न करूंगा। मैं अपनी सभा के लिये सभासद संग्रह करूंगा। जो लोग हमसे सहमत हैं उनसे निवेदन है कि वे कृपया इस फार्म को अपने पास रखें और इस पर नये सदस्यों के हस्ताक्षर करवालें और उसकी सूचना हमें देते रहें। यदि कोई सदस्य इस प्रण को तोड़ना चाहें तो उनसे निवेदन है इस बात को भी हमें सूचित करदें।"

इस फार्म पर सालभरके भीतर ही हज़ारों मनुष्यों के

हस्ताक्षर करवा लिये गये और उनके इस आन्दोलन ने भी वही सफलता प्राप्त की जो औरों ने की थी।

सन् १८९१ का अकाल

रूस अभीतक व्यापारिक देश नहीं हुआ है। वहाँ कुल कारखानों की संख्या बहुत परिमित है। सारे देश का मुख्य जीवनाधार खेती ही है। इस बात में रूस हमारे देश से बहुत कुछ मिलता है। सन् १८९१ की वसन्त ऋतु और जाड़ा दोनों ही सूखे गये। लोग अकाल की आशंका करने लगे।

महात्मा ने अकाल के आरम्भ के चिन्ह देखे और उन्होंने देखा कि धीरे धीरे अकाल कराल रूप धारण किये जा रहा है। अपने कोमल और उदार चित्त के स्वभावनुसार उन्होंने भूख से व्याकुल किसानों की सहायता करनी आरम्भ की। पहिले तो उन्होंने किसानों की वास्तविक अवस्था जानने के लिये कई एक जगहों में दौरा किया। इस दौरे से उन्हें मालूम हुआ कि किसानों के पास इतना धान्य नहीं है कि वे अगली फसल तक अपना निर्वाह कर सकें अतएव बाहरी सहायता की बड़ी आवश्यकता है। उन्होंने किसी संस्था को खड़े करने और उसके संगठन को दृढ़ करके तब कार्य आरम्भ करना ठीक न समझा। अतएव उन्होंने किसानों की सहायता का कार्य स्वयं आरम्भ किया।

उस समय रेयाज़ा प्रान्त में अकाल का कष्ट सब से अधिक था। अतएव वे अपनी दो कन्याओं और एक भतीजी को लेकर उस प्रान्त में गये और एक मित्र की ज़मींदारी पर ठहर

गये। उस समय उनके पास कार्य आरम्भ करने के लिये केवल ७५० रुपये थे। वहाँ पहुंच कर उन्होंने लोगों में भोजन बाँटना आरम्भ किया। एक सप्ताह के बाद उन्होंने एक मित्रको लिखाः—सभी लोग किसी न किसी अच्छे कार्य में लगे हैं। कुछ लोग ग़रीबों के भोजनागारों में काम करते हैं और लड़कियों ने बालकों के लिये एक स्कूल खोल दिया है। वे सभी लोगों को प्रत्येक रूप से सहायता करने के लिये सदा प्रस्तुत रहती हैं। मैं उनसे बहुत प्रसन्न हूं। समय बहुत ही टेढ़ा है और अवस्था बड़ी ही भयानक है।

इसी छोटी पूंजी और अपनेही घरवालों को लेकर उन्होंने सहायता का कार्य आरम्भ किया किन्तु उनकी इस सेवा की अफ़वाह चारों ओर उड़ने लगी। इसके सिवाय उन्होंने एक निबन्ध प्रकाशित किया। उस निबन्ध का नाम था 'अकाल पीडितों की सहायता किस प्रकार करनी चाहिये'। इस लेखमें उन्होंने सरकार के अकाल सम्बन्धी प्रबन्ध की त्रुटियाँ दिखलाई हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है अकाल पीड़ितों की सहायता दो प्रकार की हो सकती है–पहिली सहायता तो किसानों के उनके घरके सामान आदि की रक्षा करके और दूसरे उनको उचित परिमाण और शुद्ध भोजन देकर उन्हें मृत्यु और रोग से बचाकर। पहिले उपाय को पूर्ण करने के लिये केवल एक साधन का अवलम्बन किया जा सकता है। वह साधन सार्वजनिक कार्यों का खोलना है। दूसरी बात को पूरी करने के लिये—अर्थात् लोगों को हानिकारक भोजन से बचाने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक गाँव में एक

भोजनागार रहे जिसमें गांव के सब आदमियों के भोजनों का प्रबन्ध किया जाय।

इन दोनों उपायों को करते २ टाल्स्टाय का समय व्यतीत होने लगा। उनके कार्य की चर्चा देश देशान्तरों में होने लगी। श्रीमती टाल्स्टाय ने पत्रों में एक अपील छपवाई जिसमें टाल्स्टाय के कार्यों को चलाने के लिये धन की सहायता मांगी गई थी। फल स्वरूप उनके पास अच्छी अच्छी रक़में पहुंचने लगीं और जुलाई में उनके धर्मार्थ भोजनालयों की संख्या २४६ थी। इन भोजनागारों के द्वारा १३००० मनुष्योंको भोजन मिलता था। अकाल की भीषणता से बच्चों को बचाने के लिये उन्होंने १२४ ऐसे भोजनागारों खोल रक्खे थे जिनमें बच्चों के स्वास्थ के अनुकूल दूध के सदृश खाद्य पदार्थों का प्रबन्ध था। भोजन के अतिरिक्त जलाने की लकड़ी और पशुओं के लिये चारा बांटा गया। किसानों को काम में लगाये रखने के लिये उनको मूंज और सन इत्यादि दिया गया, वसन्त ऋतु में बोने के लिये कितने ही बीज उनको दिये गये।

महात्मा जी रायजाँ और टूला के प्रान्तों में काम करते थे और उनके बड़े पुत्र समारा के प्रान्त में काम करने चले गये। इस प्रकार टाल्स्टाय के कुल परिवार के लोग किसी न किसी रूप से अकाल पीड़ितों की सेवा में लगे थे। उनकी देखा देखी और भी कितने लोग काम करने लगे और सेवा का कार्य सुचारु रूप से परिचालित होने लगा। क्या भोजन बांटने में, क्या दरिद्र किसानों की झोपड़ियों के सुधारने में, क्या पुस्तकों का उपहार देने में, सभी में महात्मा भाग लेते और अपने

अमृत समान वचनों से किसानों को उत्साहित करते और आश्वासन देते थे।

इसी समय उन्होंने 'स्वर्ग का साम्राज्य तुमसे बाहर नहीं है' नामका प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा। इस पुस्तक में और बातों के अतिरिक्त तत्कालीन रूसी साम्राज्य के संगठन की कड़ी आलोचना की गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि रूस सरकार ने उस पुस्तक का प्रचार मना कर दिया। वे 'अनारकिस्ट' समझे जाने लगे। किन्तु वे खून करनेवाले और लोगों में भय उत्पन्न करने वाले अनारकिस्ट नहीं थे। वे कहते थे कि मनुष्य में स्वभाव ही से प्रेम और सत्य के अपरिवर्तन-शील दैवी नियम वर्तमान हैं अतएव इनकी पुष्टि के लिये मनुष्यों के बनाये किसी कानून की आवश्यकता नहीं है। इसी कारण वे कहा करते थे कि जबर्दस्ती किसी राज्य का संगठन करना उचित नहीं है। अतएव महात्मा की अनार्किज़्म देश में हलचल नहीं उत्पन्न करती किन्तु मनुष्यों को सर्वश्रेष्ठ सामाजिक और नैतिक नियमों की शिक्षा देती है।

इसके बाद ही उनके कई एक छोटे छोटे और ग्रन्थ निकले जिनमें 'स्वामी और सेवक' नामक उपन्यास बहुत प्रसिद्ध है। इसमें दिखलाया गया है कि सेवक स्वामी के लिये अपने प्राणों को होम देने के लिये सदा तैयार रहता है अतएव स्वामी को भी उचित है कि वह सेवक के लिये प्राण देने को तैयार रहे, अन्यथा मनुष्य की समानता न रह जायगी।

दुखोभोर आन्दोलन ।

रूस के कुछ लोग (जो अपढ़ किसान थे), पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में, रूस सरकार की कड़ी निगाह के नीचे पड़े । ये लोग अपने को ईसाई कहते थे। इनके समाज में समानता थी। सारे समाज का धन एक स्थान पर रहता और व्यक्तिगत धन रखना ये पाप समझते थे । वे ईसाई धर्म की प्रायः सभी रस्मों को व्यर्थ समझते थे और शिकार करना तथा खून करना उनकी दृष्टि में पाप था। उनका कहना था जितने प्राणी हैं उनसे प्रेम का बर्ताव न करना विवेक बुद्धि के प्रतिकूल है अतएव वह ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन करना है। इन उच्च कोटि के धार्मिक और नैतिक विचारों के सिवाय जो उनमें बड़ी ख़ूबी थी वह यह थी कि उनमें दृढ़ संकल्प और अपने विचारों के अनुसार कार्य करने की हिम्मत और दृढ़ता थी । अतएव पन्द्रहवीं शताब्दी में ज़ार की आज्ञा से-फ़ौज में काम करने से इन्कार करने के अपराध में उन्हें देश निकाले की आज्ञा हुई। वे सुदूर काकेशस प्रान्त में असभ्य ख़ूंख़ार जंगलियों के बीच में रहने के लिये भेज दिये गये ।

यहाँ पर हमें उचित मालूम पड़ता है कि उनके नाम की व्याख्या कर दी जाय । 'दुखोभोर' एक रूसी शब्द है और इसके अर्थ, परमात्मा के साथ युद्ध करने वाला है। ईसाइयों ने उनसे अप्रसन्न होकर उन्हें परमात्मा के साथ (अर्थात् विरुद्ध) लड़ने वाला कहना आरम्भ किया । किन्तु उन्होंने स्वयं इस नाम को ग्रहण कर लिया और वे अपने को 'परमात्मा के साथ (अर्थात् पक्ष में रह कर) लड़ने वाले' कहने लगे ।

काकेशस में जाकर उन्होंने असभ्य जंगलियों के साथ युद्ध करने के बदले प्रेम पूर्ण बर्ताव के कारण उनसे मित्रता करली और वे उनके साथ हिलमिल कर रहने लगे। स्वभाव ही से परिश्रमी और मितव्ययी होने के कारण उन्होंने धन भी संचित कर लिया किन्तु धन के फल स्वरूप उनमें कुछ बुराइयां भी फैल गईं। रूस सरकार ने इस अवस्था से लाभ उठाना चाहा और उन्हें फ़ौज में भर्ती होने की आज्ञा दी। दुखोभोरों की उन्नीसवीं शताब्दी की सन्तान में कुछ नैतिक दुर्बलता थोड़े दिनों के लिये छा गई और उन्होंने अस्त्र ले लिये। किन्तु सरकार के कुछ कड़े प्रवन्ध और निरङ्कुश शासन के कारण उनको अपनी भूल मालूम हो गई। अपने पुरखाओं की निर्भीकता और दृढ़ता, जिनके कारण उनको अपनी मातृभूमि से निर्वासित होना पड़ा था, याद आई। उन्होंने मिलकर अस्त्र लेने और जीवों के ऊपर हथियार चलाने से इन्कार कर दिया और दसवीं जुलाई १८९५ ई० की रात को, तीन भिन्न भिन्न स्थानों में उन्होंने सरकार के दिये हुये कुल हथियारों को तीन बड़े बड़े समूहों में एकत्रित किया और उनपर मट्टी का तेल छोड़ कर भजनों को एक स्वर से गाते हुये, उनमें आग लगा दी। निष्क्रिय प्रतिरोध का सर्वोच्च उदाहरण संसार के सन्मुख उस ऐतिहासिक रात्रि में उपस्थित किया गया और इन आदर्श को उपस्थित करनेवालों ने अपने सिर पर रूस की निरंकुश सरकार के क्रोध को जान बूझ कर निमन्त्रित किया।

महात्मा टाल्स्टाय के विचारों और उपदेशों से उनके विचार इतने अधिक मिलते जुलते थे कि केवल सरकार ने ही नहीं

किन्तु और भी बहुत से लोगों ने इस अचिन्त्य और अभूतपूर्व नैतिक वीरता का मूलकारण महात्मा हो को समझा। यह बात अवश्य ठीक थी कि दुखोभोर नेता महात्मा को अपना एक बहुत बड़ा आध्यात्मिक गुरू समझते थे। जब महात्मा ने सुना कि इस अपराध के कारण उनपर अत्याचार हो रहे हैं, किन्तु वे अत्याचारिओं से बहुत नम्र वर्ताव करते हैं, तब उनका कोमल चित्त द्रवीभूत हो उठा। वे उनके नेता होगए और उनको प्रत्येक प्रकार की सहायता पहुंचाने लगे। उन्होंने बड़े बड़े पदों में स्थित लोगों पर अपना प्रभाव डाला और अपने मित्रों से भी उनकी सहायता के लिए निवेदन किया। जब वे अपने घरों से निकाल दिये गए और उनको रूस के एशियायी पहाड़ी जङ्गली देशों में छोड़ दिया गया तब टालस्टाय ने उनके लिए धन की सहायता संग्रह करनी आरम्भ की। उनके मित्रों ने दुख से पीड़ित दुखोभोरों के लिए एक अपील छपावाई, महात्मा ने उसके अन्त में एक बहुतही ज़ोरदार उपसंहार लिखदिया। इस अपील पर कितनेही रूसियों के हस्ताक्षर थे, इन हस्ताक्षर करनेवालों को रूस सरकार ने क्रोधित होकर देश से निर्वासित करदिया। कुछ तो बाल्टिक प्रान्त में क़ैदियों की तरह भेज दिये गये और कुछ अन्य यूरो- पियन देशों को रवाना करदिये गये। यही अवस्था दुखोभोरों की सहायता करनेवालों की हुई। किन्तु इससे महात्मा टालस्टाय अपने पथ से बिल्कुल न डिगे और वे बराबर उन सब की तथा दुखोभोरों की सहायता करने लगे। इन काम करनेवालों को देशनिकाला होजाने पर कुल काम का बोझ केवल महात्माही पर आ पड़ा और वे निरन्तर परिश्रम करके

उनकी सहायता का उद्योग करने लगे। उसी समय उन्होंने कुछ पत्र भी दुखोभोरों को लिखे। ये सभी पत्र पढ़ने योग्य हैं।

अन्त में उनके उद्योगों को सफलता प्राप्त हुई। रूस की पाषाण हृदय सरकार भी विचलित होगई और उसने इन दुखी कर्म वीर और धर्मवीरों को दूसरे देशों को जाने की आज्ञा देदी। टाल्स्टाय के उद्योग से इङ्गलैण्ड के क्वेकर्स ने बृटिश सरकार से दुखोभोरों को कनाडा में बसने की आज्ञा चाही, बृटिश सरकार ने यह आज्ञा प्रसन्नता पूर्वक देदी। किन्तु उनका (जिनकी संख्या कई हज़ार थी) रूस से कनाडा भेजने के लिये प्रचुर धन की आवश्यकता थी। रूस में इतना धन एकत्रित होना असम्भव था। महात्मा ने अपने विदेशी मित्रों से धन की सहायता करने के लिये प्रार्थना की। इस प्रार्थना के उत्तर में जर्मनी, इङ्गलैण्ड, फ्रांस, हालैण्ड, स्विज़रलैण्ड इत्यादि देशों से धन आने लगा। स्वयं महात्मा ने अपने एक अपूर्ण उपन्यास को समाप्त कर उसे प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशक मार्क्सस को देदिया और उससे यह शर्त कराली कि लेखक के भाग का कुल धन दुखोभोरों की सहायता में व्यय किया जाय। अतएव दुखोभोरों के कष्टों के फल स्वरूप संसार को 'रिसरेक्शन' नामक प्रसिद्ध उपन्यास प्राप्त हुआ।

इस आन्दोलन की सफलता से महात्मा टाल्स्टाय के प्रभाव का अन्दाज़ा किया जा सकता है। इस आन्दोलन का जो इतना प्रभाव सारे संसार भर में पड़ा उसका कारण महात्मा का उसमें भाग लेना था। दुखोभोर कनाडा में पहुँचा दिये गये। अनेक देशों में सैनिक सेवा के विरुद्ध

आन्दोलन होने लगे और इन सिद्धान्तों के प्रचार के लिए कितनेही समाज प्रचलित होगए।

'रिसरेक्शन' टाल्स्टाय के अन्तिम उपन्यासों में से है उसमें घटना की रोचकता के साथ साथ उनके अपने दर्शन के उपदेश हैं। इसमें आत्मा के पात और उनके पुनरभ्युदय का चित्र बड़ी चतुरता और रोचकता के साथ खींचा गया है। इस उपन्यास में राज्य, ईसाई धर्म तथा सामाजिक बन्धनों के अतिरिक्त मनुष्य का औरों के साथ का सम्बन्ध भी जांचा गया है और उसकी कड़ी समालोचना की गई है।

उसी समय उन्होंने और भी कुछ निबन्ध प्रकाशित किए। इन निबन्धों में 'कला क्या है ?' नाम का निबन्ध बड़े महत्व का समझा जाता है। अन्य निबन्धों में रूस तथा अन्य देशों की तत्कालीन स्थिति का वर्णन किया गया है।

टाल्स्टाय धर्मच्युत कर दिए गए

यूरोपियन लोग (और खास कर ईसाई पादरी) हम लोगों से कहा करते हैं कि तुम्हारे यहां अनेक मत मतान्तर हैं, तुम्हारा तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। यहां पर मैं इसका उत्तर देना उचित नहीं समझता किन्तु अपने पाठकोंके मनोरंजन के लिए यह बतला देना आवश्यक समझता हूं कि ईसाइयों में भी दर्जनों मत मतान्तर हैं। इन दर्जनों मत मतान्तरों में तीन मुख्य हैं प्राटेस्टैण्ट, रोमन कैथलिक और ग्रीक कैथलिक ग्रीक कैथलिक ईसाई मत ग्रीस, बालकन के देशों तथा रूस में प्रचलित है, यह रूस का राज्य-धर्म है। इसके सर्वोच्च परिषद्

को होली सिनाड कहते हैं, इसका प्रभाव रूस की जनता में अपरमित है। उसकी आज्ञाएँ श्रद्धालु और सरल विश्वासी रूसी देवाज्ञा की तरह मानते हैं और उसका पालन करना अपना कर्तव्य समझते हैं, कोई यह न समझ ले कि इस परिषद् का काम केवल उपदेश द्वारा जनता की सेवा करना है। नहीं, यह तो कोई बड़ा कार्य नहीं है। उसको नाना प्रकार के दण्ड देने का भी अधिकार प्राप्त है। इन दण्डों में किसी को धर्मच्युत कर देना ही, सब से बड़ा और कठिन दण्ड समझा जाता है।

और रूस में यह दण्ड है भी बहुत कड़ा। क्योंकि 'धर्मच्युत' व्यक्ति समाज से बहिष्कृत हो जाता है। उसका हुक्का पानी बन्द होजाता है। उसके मरने पर कोई भी उसका मृतक संस्कार नहीं करता कोई भी उसके मृतक शरीर के साथ नहीं जाता, यह 'कठिन जाति अपमान' भला कौन सह सकता है?

टाल्स्टाय का प्रभाव बढ़ता गया। रूस के सभी विचारशील पुरुष, विद्यार्थी और मज़दूर उनको देवता के समान समझने लगे। प्रभाव की बढ़ती के साथ साथ समाज, ईसाईधर्म और रूस सरकार के ऊपर उनकी कड़ी आलोचना भी बढ़ती गई। रूस के निरंकुश ज़ार का भी साहस यदि किसी व्यक्ति को दण्ड देने में पीछे हटता था तो वह व्यक्ति टाल्स्टाय ही थे। किन्तु जो रूस के ज़ार भी न कर सके, वह रूस के राष्ट्रीय धर्म के 'होली सिनाड' ने कर दिखलाया। उनके प्रभाव को नष्ट करने के लिए इस परिषद् ने एक व्यवस्था पत्र, ता० ५ मार्च १९०१ को निकाल कर महात्मा टाल्स्टाय को

'मिथ्या सिद्धान्तों के प्रचार और पश्चात्ताप न करने के लिए धर्मच्युत कर दिया।

इस आज्ञा का जो अचिन्तनीय फल हुआ, उसके पढ़ने ही से उनकी सर्वप्रियता का पता लग जायगा। जिस दिन मास्को में यह आज्ञा पत्र सुनाया गया, उस दिन वहाँ दंगे हो गए जिन्हें विद्यार्थियों ने आरम्भ किया था और जिनमें पीछे से मज़दूर भी सम्मिलित हो गए थे। मुख्य सड़कों और मुहल्लों में जोश से भरे लोग इधर उधर घूम रहे थे। टाल्स्टाय नित्य क्रम के अनुसार घूमने गए थे, जब वे घूम कर लौटे तब लोगों ने उन्हें पहिचाना, उन्होंने उन्हें चारों ओर से घेर लिया और वे उनके प्रति आदर और सहानुभूति दिखलाने लगे। टाल्स्टाय बड़ी मुश्किल से अपने आपको उस भक्तों के समूह से छुटा कर घर लौट सके। वहाँ कितने ही डेप्यूटेशन उनसे मिलने के लिये और उनके साथ सहानुभूति सूचित करने के लिये उपस्थित थे, सारे दिन इसी प्रकार के सहानु-भूति सूचक प्रदर्शन जारी रहे। ज्यों ज्यों इस आज्ञा पत्र का समाचार दूर दूर तक फैला त्यों त्यों उनके पास अधिकाधिक सहानुभूति सूचक तार, पत्र इत्यादि आने लगे। उस दिन तो लोगों की भेंट, पुष्पोपहारादि से उन्हें अवकाश ही न मिला।

इस आज्ञा का उत्तर उन्होंने एक छोटे लेख में दिया जिसमें उन्होंने बड़ी योग्यता के साथ अपने ईसाई धर्म संबन्धी विचार प्रकट किये हैं। इसी लेखमें उन्होंने यह प्रका-शित किया कि 'मैं केवल यही प्रकाशित नहीं करना चाहता कि मैं ग्रीक चर्च का ईसाई नहीं हूं किन्तु मैं यह भी प्रकाशित करना चाहता हूं कि मैं अपने को ईसाई कहने में भी हिच-

कता हूं। क्योंकि मुझे भय है कि इस नाम से कहीं सत्य बात न छिप जाय। सत्य ही मुझे सब से अधिक प्रिय है और सत्य से मुझे कोई भी शक्ति च्युत नहीं कर सकती।'

इसी साल महात्मा बीमार पड़ गये। स्वास्थ्य सुधारने के लिये वे श्रीमती टाल्स्टाय के साथ क्रीमिया गये। वहां पहिले तो उन्हें कुछ लाभ हुआ किन्तु पीछे से उनकी अवस्था बड़ी संदिग्ध होगई। किन्तु अन्त में वे अच्छे होगये। जब वे बीमारी में थे, तब उन्हें विचार करने का अच्छा समय मिलता था। एक पत्र में उन्होंने लिखा है, मैं एक बात अवश्य कहूंगा वह यह कि बीमारी से मुझे बड़ा लाभ हुआ। जब मैंने अपने आपको ईश्वरके सामने-या उसके सामने जिसके हम क्षणिक परिमाणु हैं-रक्खा तब मेरी बहुत सी मूर्खता ने मुझे छोड़ दिया। जो बहुत से दोष मैंने अपने में पहिले नहीं देख पाये थे वे सब मेरी समझ में आगये। इसके बाद मेरे हृदय का बोझ हलका सा होगया। लोगों को बहुधा यही चाहिये कि वे अपने प्रिय लोगों से कहें कि 'मैं तुम्हारी आरोग्यता नहीं किन्तु तुम्हारी बीमारी चाहता हूं।'

इसके बाद उन्होंने रूसी भाषा में संसार के महात्माओं के कथनों का एक संग्रह निकाला।

रूस-जापान युद्ध के बाद रूस में जो विप्लव हुआ, अपने सिद्धान्तों के अनुसार ही वे उसमें सम्मिलित नहीं हुए। सम्मिलित होना तो दूर, उलटे उन्होंने एक पत्र छपवाया जिसमें आपस में लड़ने के लिये लोगों को मीठे शब्दों में उलाहना दिया गया था और यह उपदेश दिया गया था कि परम पिता के सामने आकर प्रेम और विवेक के अनुसार अपने

भेदों को दूर करके आपस में फिर मिल जाओ।

किन्तु उनके इस प्रार्थना पत्र पर कुछ भी ध्यान न दिया गया और सरकार की ओर से विद्रोहियों को बराबर प्राण दंड दिया जाने लगा। सर्वसाधारण में भय फैला हुआ था। उसी समय टाल्स्टाय ने इन प्राण दंडों के विरुद्ध एक ज़ोरदार लेख निकाला; उस लेख का नाम था 'मैं चुप नहीं हो सकता'।

इस समय के लिखे गये उनके साहित्य सम्बन्धी लेखों में कई लेख बहुत प्रसिद्ध हैं। एक लेख में उन्होंने शेक्सपियर की अस्वाभाविक उक्तियां तथा अन्य दोष दिखाकर उसे सर्वोच्च नाटककार के पद से उतार दिया। दूसरा लेख जो बहुत रोचक है इस नामका है—"जबर्दस्ती का कानून और प्रेम का कानून"।

यों होते होते उनके महान और परोपकारी जीवन के अस्सी वर्ष समाप्त होने आये। लोग उनकी वर्ष गांठ को बड़ी उत्सुकता से परखने लगे। उधर दूसरे दल के लोगों ने अपने दल के पत्रों में उनके विरुद्ध लेख निकालना आरम्भ किया जिनमें एक नास्तिक का आदर करना पाप बतलाया। सरकार भी उनकी सहायता पर प्रस्तुत हुई और उसने आज्ञा निकाली कि कोई भी उनकी जुबली के दिन आध्यात्मिक उपदेशक कह कर उनका आदर न करे। हां यदि कोई साहित्य सेवी की दृष्टि से उनका आदर करना चाहे तो कुछ कह सकता है। बहुत से स्थानोंमें स्थानीय अधिकारियों ने इसका तात्पर्य यह समझा कि उस दिन कुछ भी उत्सव करने की आज्ञा नहीं है और कुछ ने इस संदिग्ध अवस्था में कुछ न

करना ही उचित समझा। अतएव बहुत से स्थानों में उसदिन कोई भी उनके बारे में खुल्लमखुल्ला एक शब्द भी न बोलने पाया।

किन्तु सरकार और धर्म के मुखिया की आज्ञा पर कुछ ध्यान न देकर लोगों ने टाल्स्टाय के प्रति आदर और भक्ति दिखाने में कोई कसर न की। स्वयं टाल्स्टाय ने यह प्रकाशित किया था कि उस दिन कोई सार्वजनिक सभा आदि न करके प्रार्थनाही में वह दिन व्यतीत किया जाय। उस दिन संसार के पत्रों में उनके चित्रादि छापे गये। उनके पास डेप्यूटेशन, पत्रों और तारों की भरमार हो गई। केवल तारों की संख्या दो हजार से अधिक थी। जहां सम्भव था, वहां उस दिन उनके आदर में नाटकादि किये गये। सारा देश अपने प्यारे उपदेशक के आदर करने में मग्न रहा।

सेन्ट पीटर्सबर्ग (पेट्रोग्रेड) में उस दिन उनके कुल ग्रंथों चित्रों, हस्तलिपियों आदि की एक प्रदर्शिनी की गई और यह निश्चय किया गया कि इन वस्तुओं का एक स्थायी अजायब घर बनाया जाय।

अन्तिम दिन और दीप निर्वाण

अब हम महात्मा टाल्स्टाय के अन्तिम दिवसों का वर्णन करने के लिये उपस्थित हुए हैं। ख्यातिके साथ ही उनका कार्य भी बढ़गया था। उनके पास नित्य ही अनेक विद्वान और दर्शनों के लिये उत्सुक व्यक्ति मिलनेके लिये आया करते थे। उनका पत्र व्यवहार बहुत अधिक था। वृद्धावस्था की

दुर्बलता उनपर अपना प्रभाव डाल चुकी थी । किन्तु उनमें वह आध्यात्मिक जागृति, जो बहुत पहिले होचुकी थी और जिसने ठीक स्वरूप सत्तर वर्ष की अवस्था में लिया था, उनके ऊपर अपना प्रभाव जमाने लगी। उस समय उन्होंने केवल एक ग्रन्थ लिखा। उसका नाम है 'ए साइकिल इन रीडिंग'। उनका स्वभाव अपनी पुस्तकों की प्रशंसा करने का नहीं था, किन्तु इस पुस्तक के बारे में वे लिखते हैं कि लोग मेरी सब बकवाद भूल जायँगे, किन्तु यह ग्रन्थ मेरे बाद भी जीवित रहेगा।'

इस वाक्य से उस पुस्तक के महत्व का परिचय मिल जायगा। इस पुस्तक में उन्होंने एक धर्म का बीज आरोपण किया है, जो भविष्य में चलकर बहुत सम्भव है कि मनुष्य जाति का धर्म हो जाय। किन्तु इस पुस्तक के सिवाय अपने अन्तिम दिनों में उन्होंने कोई विशेष हित सेवा नहीं की। उनका मन अपने सिद्धान्तों के ऊपर विचार करने में लगा रहता था वे अपने जीवन के रहने के ढंग को अपने सिद्धान्तों के विपरीत समझते थे और उन्होंने कई बार घर छोड़कर वहां एकान्त में चले जाने का विचार किया। किन्तु फिर उन्होंने सोचा कि यह कार्य बड़ा स्वार्थमय है क्योंकि इससे उनके घर-वालों को बड़ी मानसिक वेदना होगी। अतएव उन्होंने यह निश्चय किया कि जब तक उनके साथ रहना बिलकुल ही असम्भव न हो जाय, तब तक वे घर न छोड़ेंगे।

सन् १८९७ ई० में उन्होंने अपनी स्त्री के नाम एक पत्र लिखा किन्तु वह श्रीमती के पास भेजा नहीं गया। उसके ऊपर लिखा था "मेरी मृत्यु के बाद दिया जाय"। उस पत्र का

अनुवाद नीचे दिया जाता है।

प्रिय सोनया,

मेरे धार्मिक सिद्धान्तों और मेरे जीवन में जो परस्पर विपरीतता है उसके कारण मुझे बहुत दिनों से मानसिक वेदना हो रही है। मैं तुम्हें जीवन के इस ढंग को छोड़ने के लिये बाध्य नहीं कर सकता क्योंकि मैंने ही तुम्हें इस ढंग में डाला है। और मैं तुम्हें अब तक इस कारण से नहीं छोड़ सका कि लड़के अभी तक छोटे थे, और उन पर मेरे प्रभाव की आवश्यकता थी। फिर मुझे यह भी भय था कि मेरे इस कार्य से तुम्हें दुःख होगा। किन्तु जिस प्रकार, मैं सोलह वर्ष से तुम से लड़ते झगड़ते तुम्हें नाराज़ करते, इन सुखों से, जिनमें मैं घिरा हूं और जिनका मैं आदी हो गया हूं, मोह करते हुए जीवन व्यतीत कर रहा हूं उस प्रकार मैं अब और अधिक दिनों तक नहीं रह सकता। और अब मैं वह कार्य सम्पन्न करना चाहता हूं जिसको करने की मेरी बड़ी इच्छा है—अर्थात् मैं तुम लोगों से विदा होकर अन्यत्र जाना चाहता हूं। इसके कई कारण हैं। पहिला कारण तो यह है कि ज्यों ज्यों मेरी अवस्था बढ़ती जाती है त्यों त्यों मेरा जीवन मुझे अधिक कष्टकर मालूम होता है और मुझ में एकान्त सेवन की इच्छा प्रबल होती जाती है। दूसरा कारण यह है कि लड़के अब सयाने हो गए हैं. मेरा प्रभाव अब घर पर आवश्यक नहीं है और तुम लोगों के ध्यान आकर्षित करने के लिए बहुत सी बातें पैदा हो गई हैं। इन्हीं कारणों से तुम्हें मेरा न रहना कुछ मालूम न पड़ेगा। किन्तु विशेष कर हिन्दुओं की तरह, जो साठ वर्ष की अवस्था में जंगल को चले जाते हैं, प्रत्येक वृद्ध मनुष्य अपने जीवन के अन्तिम दिन

ईश्वर के भजन में लगाना चाहता है। वह उन दिनों को गप्पों मज़ाक, खेल, टेनिस में व्यतीत नहीं करना चाहता। अतएव मैं सत्तर वर्ष की अवस्था प्राप्त कर, विश्राम और एकान्त की उत्कट इच्छा करता हूं। और यदि मैं अपने जीवन को अपने सिद्धान्तों के अनुसार न भी चला सकूं तो यह भी नहीं चाहता कि जीवन व्यतीत करने के ढंग और मेरे धार्मिक विश्वासों तथा विवेक बुद्धि में बहुत अधिक भेद हो। यदि मैं अपने इस विचार को प्रगट रूप से कार्य में परिणित करने की चेष्टा करूं तो लोग मुझसे विनय करेंगे, प्रार्थना करेंगे, शिकायत करेंगे और सम्भव है कि वे मुझे अपने इस विचार से डिगा दें।

अतएव यदि मेरे इस कार्य से तुम लोगों को कष्ट हो, तो तुम सब लोग, किन्तु विशेष कर सोनया तुम, मुझे क्षमा करना। तुम लोग प्रसन्नतापूर्वक मुझे जाने की अनुमति दे दो मेरी खोज मत करो, मेरे विरुद्ध शिकायत मत करो और मुझे दोष मत दो।

यदि मैं तुम्हें छोड़ता हूं तो इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि मैं तुमसे असंतुष्ट हूं। मैं इसे भली भांति जानता हूं कि जिस प्रकार मैं बातों को देखता और समझता हूं उस प्रकार तुम कदापि उन्हें न तो देख सकती हो और न समझ सकती हो। और इसी कारण से तुम अपने जीवन के ढंग को बदल भी नहीं सकती और न उसके लिये कुछ बलि दे सकती हो जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकती। अतएव मैं तुम्हें दोष नहीं देता बल्कि मैं उन पैंतीस वर्षों को बड़ी कृतज्ञता और प्रेमपूर्वक याद करता हूं जो मैंने तुम्हारे साथ बिताए हैं

और विशेष कर इस जीवन के प्रथम भाग को, जब तुमने अपना कार्य बड़ी दृढ़ता के साथ किया था, तुमने मुझे और संसार को वह सब दिया जो तुम दे सकती थीं। तुमने मातृ-स्नेह दिया और इसकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। किन्तु जीवन के अन्तिम भाग (पन्द्रह वर्ष) में हम दोनों आपस में खिंच गये। मैं अपने को गलत नहीं कह सकता क्योंकि मैं जानता हूं कि मैं अपने लिये या दूसरों के लिये नहीं बदला किन्तु मैं अपने स्वभाव के परिवर्तन के लिये रोक नहीं सकता और साथ ही मैं तुम्हें भी इस लिये दोष नहीं दे सकता कि तुम मेरे साथ नहीं बदलीं बल्कि इसके विपरीत मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं और तुम्हें सप्रेम याद करता हूं और उसको सप्रेम याद रखूंगा जो तुमने मुझे दिया है।

अन्तिम नमस्कार, प्रिय सोनया,

तुम्हारा स्नेही

८-२० जुलाई १८९७ लिओ टालस्टाय

इसी प्रकार का एक पत्र उन्होंने अपनी स्त्री को १९१० के जुलाई मास में लिखा था। अपना घर छोड़ने से एक सप्ताह पहिले उन्होंने अपना विचार अपने किसान मित्र माईकेल नोवीकोफ़ से कहा। छठवीं नवम्बर को उन्होंने नोवीकोफ़ को एक पत्र भेजा उसमें यह लिखा था :—

जो कुछ मैंने तुमसे उस दिन कहा था उसके बारे में मुझे तुमसे एक निवेदन करना है। यदि मैं सचमुच तुम्हारे पास आऊं तो क्या तुम मेरे लिये एक अलग गर्म झोपड़ी का प्रबंध कर सकोगे? यह झोपड़ी चाहे जितनी छोटी हो कुछ पर्वाह नहीं। एक बात और—यदि तुम्हें तार भेजने की आवश्यकता

होगी तो मैं अपना नाम न लिख कर टी. निकोलीफ़ के नाम से हस्ताक्षर करूंगा। इसका ध्यान रहे कि यह बात हमारे तुम्हारे ही बीच में रहे।"

दसवीं नवम्बर को उन्होंने अपना विचार दृढ़ किया। उस दिन वे बड़े तड़के उठे। उन्होंने यात्रा का जल्दी जल्दी प्रबन्ध किया और सब से पहिले अपनी स्त्री को एक पत्र लिखा।

सबेरे ४ बजे, १० नवम्बर १९१०

मेरे विदा होने से तुम्हें कष्ट होता है। इसका मुझे शोक है किन्तु मैं क्या करूं मैं इसके विरुद्ध कार्य करने, विचार करने और विश्वास करने में असमर्थ हूं। घर पर मेरी अवस्था असहनीय हो गई है। इसके अतिरिक्त मैं उस विलास पूर्ण जीवन में नहीं रह सकता जिसमें मैं रहता आया हूं और अब मैं वही करता हूं जो मेरी अवस्था के वृद्ध साधारणतया किया करते हैं अर्थात् मैं सांसारिक जीवन से अलग हुआ जाता हूं और अपने शेष दिनों को शान्ति से व्यतीत करने की चेष्टा करता हूं।

'मेरा अभिप्राय कृपया ठीक ठीक समझ लो और यदि तुम्हें मेरा स्थान मालूम भी हो जाय तो भी तुम मेरे पास न आना। यदि तुम यह करोगी तो मेरा तुम्हारा सम्बन्ध अधिक बिगड़ जायगा और मैं अपने विचार से कदापि न डिगूंगा।

मैं तुम्हें अड़तालीसवर्ष के मेरे साथ उचित जीवन व्यतीत करने के लिये धन्यवाद देता हूं और मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि तुम मेरी भूलों को क्षमा करना। मैं भी हृदय से तुम्हारी उन सब बातों को, जिन्हें मैं दोष समझता हूं, क्षमा

किये देता हूं। मैं तुम्हें सलाह देता हूं कि मेरे चले जाने से जिस अवस्था में तुम पड़ जाओ, उस पर सन्तोष करो यदि तुम मुझसे पत्र व्यवहार करना चाहो तो सेशा से कहना। वह जानती है कि मैं कहां हूं। किन्तु वह तुम्हें मेरा स्थान नहीं बतलावेगी।

लियो टाल्स्टाय

पुनश्च—सेशा से मैंने अपनी हस्त लिपियों और अन्य वस्तुओं को संग्रह कर मेरे पास भेजने के लिये कह दिया है।

इसके बाद उन्होंने अपनी कन्या सेशा और अपने मित्र डाकृर मेकोविट्स्की को जगाया और उनकी सहायता से असबाब बांधा। इसके बाद वे एक गाड़ी पर डाकृर के साथ सवार हो कर शैकीनो स्टेशन को चले। वे रास्ते भर पीछे किये जाने के भय से कांप रहे थे। अन्त में वे गाड़ी में सवार हो गये और गाड़ी चल दी। अब उनका चित्त स्थिर होगया अपने विचार के औचित्य के बारे में उन्हें कुछ भी सन्देह नहीं था किन्तु अपनी स्त्री के लिये उन्हें कुछ दया हो आई। सन्ध्या को वे आष्टिन मठ में पहुंचे जहाँ उनकी संन्यासिनी बहिन मेरी थी। वहाँ उनका खूब स्वागत किया गया।

किन्तु महात्मा का स्वास्थ ठीक नहीं था। यात्रा के आरम्भ ही से उनको कष्ट होरहा था। पहिले तो केवल कमज़ोरी और सुस्ती ही मालूम पड़ती थी किन्तु पीछे से उन्हें सर्दी लगगई और इसी कारण उनको ज्वर आ गया। जब उन का शरीर ठीक न रहा तब उन्होंने ठण्डे देश को छोड़ दक्षिण की ओर प्रस्थान करदिया किन्तु रास्ते में उनकी तबियत इतनी बिगड़ी कि उनके साथी डाकृर मास्कोवी और सेशा ने सलाह

करके उनको रास्ते के एक छोटे स्टेशन पर उतार लिया। इसका नाम अस्टापोवो है और यह अरल-रायज़ाँ रेलवे का एक छोटासा स्टेशन है । जब इस स्टेशन के स्टेशन मास्टर श्रीयुत आइवन ओसोलेन को मालूम हुआ कि यह बीमार व्यक्ति कौन है तबी उन्होंने तत्काल अपने उदार हृदय का परिचय दे अपने कमरों को उनके लिए खाली कर दिया ।

१२ नवम्बर के समाचार पत्रों ने सारे संसार में यह ख़बर पहुंचा दी कि टाल्स्टाय ने सदा के लिए अपने गृह का परित्याग करके वैराग्य ले लिया है। उन्होंने अपने घर ही का परित्याग नहीं कर दिया किन्तु उन्होंने अपने को संसार से अलग करदिया है। तभी से सारा विचारशील संसार इस महात्मा सम्बन्धी समाचारों को जानने के लिए उत्सुक हो उठा, जो लोग महात्मा को एक सनकी व्यक्ति कहकर उनका मज़ाक उड़ाया करते थे वे भी उस वृद्धावस्था में अपने विचारों को व्यवहार में परिणित करने के लिए उनकी प्रशंसा करने लगे।

किन्तु उनके शारीरिक जीवन का दीपनिर्वाण बहुत समीप था। सर्दी और कमज़ोरी के कारण उनके फेफड़े सूज आए और वे स्वयं समझ गये कि उनका अन्त समय आगया। प्रायः अन्त तक उनको संज्ञा रही, वे बराबर बातचीत करते रहे। वे पत्रों को बड़े ध्यानपूर्वक सुनते, बातें करते और मज़ाक भी कर उठते थे। किन्तु जब कभी उनको उस समय की गम्भीरता की भी याद आजाती थी और वे उस समय बड़े गम्भीरतापूर्ण शब्द बोल उठते थे। मरने से चार दिन पहिले तक वे अपनी डायरी बराबर लिखते रहे। उस डायरी

के अन्तिम शब्द ये हैं:—

"जो कुछ है वह सब अच्छे ही के लिये है, इसी में मेरी भलाई है और सभों की भी भलाई है।"

उनकी मृत्यु बड़ी शान्त हुई। पहिले तो उन्हें कुछ देर गहरी सांस आती रही फिर वह बहुत धीमी होगई। मृत्यु से कुछ मिनट पहिले यह धीमी सांस भी बन्द हो गई। कुछ देर के लिए बिल्कुल सन्नाटा छाया रहा। अन्त में दो बहुत ही हल्की सांस आईं। और उन्हीं दो सांसों के साथही संसार के सर्वश्रेष्ठ आधुनिक महात्मा के प्राणपखेरू उड़ गये।

× × × × ×

२२ नवम्बर को उनका शरीर अस्टापोवो से सासेका स्टेशन पर पहुंचाया गया। वहां उनके कुछ सम्बन्धी, मित्र, असंख्य विद्यार्थी, किसान, मास्को की सभाओं के प्रतिनिधि इत्यादि उनके मृत शरीर के प्रति आदर दिखलाने के लिये उपस्थित थे। वहाँ से उनका कफ़न यासनाया पालियाना पहुंचाया गया। कुछ किसान उसे अपने कन्धों पर उठाए हुए थे। उस साधारण लकड़ी के कफ़न के साथ हज़ारों मनुष्यों के गले मिलकर मृत्यु समय के गाने गा रहे थे। इस सारे दृश्य ने लोगों के हृदय पर बड़ा प्रभाव डाला। सब से आगे दो किसान थे जो लकड़ड़ियों के सहारे एक झण्डे को लिये जा रहे थे। उस पर लिखा था—

"तुम्हारे अच्छे कामों की स्मृति हमारे बीच में कभी न मरेगी"।

"तुम्हारे बिना यासनाया पालियाना के अनाथ किसान।"

कफ़न यासनाया पालियाना में पहुंचाया और घर के एक कमरे में रख दिया गया। उसका ढकन खोल दिया गया। वहां जाकर हज़ारों मनुष्य अपने प्यारे गुरु के अन्तिम दर्शन करने लगे। भक्ति और शोक से विह्वल दर्शकों का तांता बँध गया।

अन्त में यह कृत्य भी समाप्त हुआ। लोग मृत्यु काल के समय पढ़े जाने योग्य गीत गाने लगे। महात्मा के पुत्र उनका मृत शरीर उठाकर ले चले। जितने लोग वहाँ उपस्थित थे वे सब इस महात्मा के बचे हुए नश्वर शरीर के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए घुटनों के बल बैठ गए। उनकी रथी आगे बढ़ी। यासनाया पालियाना की गलियों में होकर वह चली। उद्यानों और पास के जङ्गल में होकर वह गुज़री और अन्त में वह उस स्थान पर पहुँची जहाँ सड़क के किनारे जङ्गल से लगकर, उनके शरीर के लिए समाधि खोदी गई थी। यह वही स्थान था जहाँ प्रायः सत्तर वर्ष पहिले उनके बड़े भाई ने वह काल्पनिक हरी छड़ी गाड़ी थी जिसमें वह भेद लिखा था जिसके जानने से मनुष्यमात्र सुखी हो सकते थे। उसी स्थान पर उस महात्मा का शव्द जगज्जननी वसुन्धरा की गोद में सौंपा गया, जिसका जीवन मनुष्य जाति को सुखी करने, शान्ति का प्रचार करने, दीन, दुखी और दुर्बलोंको सुखी करने में व्यतीत हुआ था। जिसने आत्मबल, प्रेम, और विचार के मन्दिर में अपना जीवन न्यौछावर कर दिया था।

इसी स्थानपर महात्मा ने अपने भाई की स्मृति में गाड़े जाने की इच्छा की थी। वहीं उनकी समाधि तैयार की गई।

समाधि खोदते समय एक ऐसी घटना हो गई जिससे मालूम पड़ सकता है कि लोगों के हृदय में उन्होंने कितना स्थान पाया था। जब समाधि खोदी जाने लगी तब गाँवके सभी लोगोंने उसे खोदने की इच्छा प्रकट की। अतएव सब लोगोंने मिलकर—एक एक फाँवड़ा चला कर—वह समाधि तैयार की। यह समाधि तो उनके शरीर के लिये थी किन्तु उनकी आत्माके लिये प्रेममय समाधि—नहीं, नहीं, प्रेममय मन्दिर—उन सबके हृदय में वर्तमान था।

कफ़न समाधि में लटकाया गया। असंख्य लोगों ने जो वहां उपस्थित थे—घुटनों के बल बैठकर और सिर झुकाकर महात्मा की आत्मा के लिये—जिसने सदा उनकी आत्मा के लिये प्रार्थना की थी—प्रार्थना की। उस कफ़न पर 'मट्टी में मट्टी' और 'धूल में धूल पढ़ते हुये मट्टी डाली जाने लगी। थोड़ी देर में उनका पार्थिव शरीर, सदाके लिये लोगोंकी दृष्टि से लुप्त हो गया। जो जिसका था वह उसमें जा मिला। मट्टी मट्टी में मिल गयी। आत्मा भी परमात्मा में मिल जाय।

क्या टाल्स्टाय संसार से चले गये ?

टाल्स्टाय की मृत्यु का समाचार उसी दिन जातियों के मुख रूपी पत्रों द्वारा सारे संसार में फैलगया। प्रायः एकमास के लिये आधुनिक संसार के इन व्यग्रता प्रेमियों को व्यग्र रहने के लिये अच्छा मसाला मिल गया। एक महीने तक उनके बारे के चित्रों और लेखों से वे अपने कलेवर रँगते रहे। धीरे धीरे टाल्स्टाय के बारे में लेखादि कम होने लगे और दो ही महीने

के भीतर इन व्यक्तियों के लिये टाल्स्टाय भूतकाल की वस्तु हो गये—और पत्रोंने उनका ज़िक्र करना छोड़ दिया।

किन्तु यह प्रश्न उठता है कि क्या टाल्स्टाय को संसार इतनी शीघ्रताके साथ भुला देगा? क्या उनके शरीरके साथ ही उनका कुल प्रभाव चला गया? क्या उन्होंने हमको इतने मूल्य की कोई वस्तु नहीं दी कि हम उनकी मृत्युके बाद दो महीने भी उनको न याद रख सकें और क्या वे संसार से चले गये?

जिन लोगों को महात्मा के साथ साक्षात करनेका सौभाग्य प्राप्त था और जो लोग उनके भाव तथा विचार ही नहीं किन्तु उनकी आत्मा से परिचित थे, उनका कथन है कि महात्मा का प्रभाव इतना क्षणिक नहीं है। उनका प्रभाव हमारी संतान की संतान अनुभव करेगी और भविष्य के सामाजिक, नैतिक धार्मिक तथा राजनैतिक प्रश्नों को हल करते समय लोग उनके विचारों से काम लेंगे।

महात्मा को अमर और विश्वकी वस्तु बनाने के लिये उनमें कई एक गुण वर्तमान थे। पहिला गुण तो यह था कि वे भारतीय नेताओं की तरह केवल पढ़े लिखे लोगों ही के विचारों को प्रगट न करते थे और न उनकी तरह वे पढ़े लिखे लोगों ही को सम्बोधन करते थे। वे मनुष्य जाति के सच्चे नेता थे—वे मनुष्य मात्र को सम्बोधन करते थे। उनके शब्दों से अपढ़ किसान, स्कूल और कालेज के विद्यार्थी, विश्वविद्यालयों के अध्यापक, दार्शनिक और वैज्ञानिक, सिद्धान्त हीन राजनीतिज्ञ, कुली और मज़दूर, कारीगर और धनी सभी को सन्तोष प्राप्त होता है। लेखकके लिये यह गुण थोड़ा नहीं है।

उनकी लेखन शैली की सादगी अवर्णनीय है । उनकी उन्हीं कहानियों को तो किसान भी बड़े चावसे मनोरंजन के लिये पढ़ते हैं, और उन्हीं कहानियोंको बड़े बड़े विचार शील पढ़ कर उनमें से अपनी ज्ञान पिपासा मिटाने की चेष्टा करते हैं। उनमें इतनी प्रतिभा थी कि वे लोग भी 'जो कि उनको एक झक्की और स्वप्न देखने वाला कहा करते थे, उनके कथन को बड़े ध्यानसे सुनते थे।

लोगों का विश्वास है कि सर्व प्रिय होनेके लिये मीठी बातों का उपयोग करना अत्यन्तावश्यक है, किन्तु यह सत्य नहीं है। यदि यह सत्य होता तो टाल्स्टाय जो बड़े बड़े समालोचक थे कभी सर्व प्रिय न हुये होते। सर्वप्रिय होने के लिये जिन गुणों की आवश्यकता है। अर्थात् शुद्ध हृदय और निष्कपट प्रेम वे दोनों ही उनमें वर्तमान थे। इन्हीं गुणों के कारण वे सर्वप्रिय थे। उनकी ज़ाहिरा कड़ुई बात भी उनके हृदय की पवित्रता और अमिश्रित प्रेम में मिली हुई होती थी, उनकी समालोचना व्यक्तिगत मनोविकारों के कारण नहीं होती थी। इसी कारणों से उनको यह सर्वप्रियता और 'अजातशत्रुता' प्राप्त करने का सौभाग्य लब्ध हुआ था।

उनकी सर्वप्रियता का दूसरा कारण यह है कि उनका उद्देश्य और साधन दोनों ही (Constructive) बनानेवाले होते थे। नैपोलियन की सर्वप्रियता दूसरों को नष्ट करने के कारण हुई थी और जब दूसरों ने नैपोलियन को नष्ट कर दिया तब वह भी नष्ट हो गई। किन्तु टाल्स्टाय की सर्वप्रियता जीवन लेने के कारण नहीं, जीवन देने के कारण हुई—वह इस लिये कि उन्होंने जीवन के सार का ज्ञान अपने समय के जड़

वादियों को दिया। अतएव वह कदापि नष्ट नहीं हो सकती। उन्होंने जीवन के जिस ज्ञान का उपदेश दिया वह मनुष्य को सब कुछ छोड़ कर बाबा जी बन जंगल भाग जाने के लिये नहीं कहता, किन्तु वह कहता है कि जीवन को अधिक पूर्ण करो, जीवन को अधिक स्वतन्त्र बनाओ, उसको अधिक सुखी करो और अधिक मनुष्यत्व प्राप्त करने की चेष्टा करो।

तीसरी बात जो टाल्स्टाय में विशेषता की थी वह यह थी कि उनको भविष्य में भरोसा था। वे ऐसे देश में उत्पन्न हुये थे जो सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक कुरीतियों और बुराइयों के लिये बदनाम है। उन्हें अहर्निश इन्हीं बुराइयों के बीच में रहना पड़ता था, उन्हें इन बुराइयों की अतुल-शक्ति का अन्दाज़ा था, किन्तु उन्होंने कभी यह विचार नहीं किया कि भविष्य इन बुराइयों को दूर न कर सकेगा। हम फिर दुहराते हैं कि उन्हें भविष्य में विश्वास था और यह भविष्य का विश्वास मनुष्य के लिये एक अपूर्व वर है। उसके लिये यह एक अप्रतिम शक्ति है। जिस मनुष्य ने भविष्य में विश्वास नहीं किया वह उस नाविक के समान है जो लहरों की दया पर और तूफ़ान की कृपा पर अपनी नाव छोड़कर भाग्य ठोंक कर एक कोने में बैठ जाता है।

टाल्स्टाय का चौथा गुण उनकी अकृत्रिम सादगी और मिलनसारी थी। उनके घर बाहर ही (यासनाया पालियाना) में एक बड़ा पेड़ था। इस पेड़ को लोग 'ग़रीबों का पेड़' कहा करते थे। इस पेड़ के नीचे महात्मा बहुधा बैठा करते थे। वहाँ दरिद्र किसान उनसे मिलने के लिये दूर दूर से आ-कर बैठते थे। इसी स्थान पर महात्मा उनसे मिलते थे और

उनसे बातचीत करते तथा उनको मित्रभाव से सलाह दिया करते थे। कोई भी और विशेष कर दीन दरिद्री, उनसे प्रत्येक समय मिल सकता था संसार के बड़े से बड़े विद्वान उनसे मिलने जाते और वे उनसे उसी बेतकल्लुफ़ी और खुले दिलसे मिलते जिससे वे दीन दरिद्रों से मिलते थे। किसानों से मिलते समय वे उनके योग्य बातें करते, उनके योग्य कहानी कहते और उन्हीं के योग्य विषय उठाते। किन्तु जब वे किसी विद्वान से मिलते तब उसी सादगी से वे बड़े बड़े विषयों को भी उठा लेते थे।

वे सम्पन्न थे, सुखी थे, मनुष्य को सुखके लिये जिनबातों की आवश्यकता है वे सब उनके लिये उपस्थित थे। किन्तु तब भी वे बहुधा दुखी रहा करते थे। उनका यह दुःख अपने लिये नहीं था। वे पर दुखी से दुखी होनेवाले थे। अपने आस पासके दीन दुखियों को देखकर उनको दुख हो आता था। उनकी आत्मा में निस्वार्थ सहानुभूति अनुभव करने की शक्ति थी। यह अलौकिक शक्ति ही उनको सर्वप्रिय बनाने के लिये यथेष्ट थी।

हैगेल ने एक स्थान पर कहा है कि "A great man condemns the world to understand him. अर्थात् महापुरुषों का समझना संसार के लिये एक कठिन समस्या है"। सो, टालस्टाय को लोगों ने धीरे धीरे समझे है। आरम्भ में टालस्टाय 'बकवादी' 'झक्की' आदि समझे जाते थे। लोग उनकी पुस्तकों के ठीक ठीक तात्पर्य को नहीं समझते थे। उनके बड़े बड़े उपन्यास और लेख—जो हमारे समय के कल्पना के विकाश के सर्वोच्च दृष्टान्त हैं—लोग बीस वर्ष

पहिले नहीं समझ सकते थे और—उनके अनुवाद भी इतने तोड़ मरोड़कर किये जाते थे कि अनुवादक अनुवाद में महात्मा के परम प्रिय भावों का खून करडालते थे। उनके ग्रन्थों का निकलना कठिन होता था। कारण क्या था? संसार उनको समझने में असमर्थ था।

किन्तु उनके जीवन के अन्तिम दिनों में इस विषय में बड़ा परिवर्तन हो गया था, और यह परिवर्तन किसी आन्दोलन के कारण नहीं हुआ था। संसार मानों धीरे धीरे जग उठा। वह उस महर्षि की गम्भीर वाणी की सरलता और मधुरताको धीरे धीरे समझने लगा। इस जागृति के साथ ही उनके ग्रन्थों के अविकल अनुवाद निकलने लगे। उनकी पुस्तकों के अनुवाद के संस्करण लाखों की संख्या में होने लगे। उनके मुंह का निकला एक एक शब्द संसार ध्यान पूर्वक सुनने लगा। दिनोंदिन अधिकाधिक लोग उनकी निष्कपट बातों को पसन्द करने लगे। उन्होंने उच्च समाजके दरिद्रियों से दूर रहने के सारे नियमों को तोड़ डाला था। किन्तु इसके साथही उन्होंने मनुष्यजाति को भी हृदय से लगाया था। अतएव विचारशील मनुष्यों के हृदय में उनके प्रति कृतज्ञता के भाव उत्पन्न होने लगे।

आधुनिक समय 'वैज्ञानिकों का काल' है। इसमें वैज्ञानिक आविष्कारों की भरमार है। काण्ट, हैगल, स्पैन्सर आदि का समय बीता हुआ समय है। और ये भी शुष्क दर्शनिक थे। अतएव यूरोप में ऐसे महर्षियों की जो केवल दार्शनिक ही न हों किन्तु जिनका जीवन भी ऋषियों के समान हो, बहुत कमी है। जिनमें एक बात थी उनमें दूसरी नहीं थी, जिनमें दूसरी थी उनमें

पहिली नहीं थी। दासों के त्राता विलबरफोर्स और हावर्ड, काण्ट और हैगल नहीं थे तथा काण्ट और हैगल में विल्बर-फोर्स और हावर्ड के मुख्य गुण ने विकाश नहीं पाया था। किन्तु इस महर्षि में यूरोप के इतिहास में कदाचित् पहिले पहिल—इन दोनों समुदायों के गुणों ने उचित स्थान पाया था और यूरोप केवल एक ही ऐसे महर्षि के लिये गौरव कर सक्ता है जो हमारे महर्षियों की श्रेणी में गणना करने योग्य हो—और वह महर्षि महात्मा टाल्स्टाय थे।

ऋषियों के भारत प्रेम सम्बन्धी इस पंक्ति पर मेरे कुछ मित्रों ने एक बार आपत्ति की थी 'समदर्शी ऋषि मुनियों को भी भूमि बहुत जो प्यारी थी,' उनका कहना था कि जो समदर्शी है, जो विश्वप्रेमी है, वह एक देश या भूमि विशेष से कैसे अधिक प्रेम कर सकता है? किन्तु महात्मा टाल्स्टाय समदर्शी और विश्वप्रेमी होने पर भी आदर्श रूसी थे, उन्होंने रूसी रहन सहन को कभी नहीं छोड़ा वे अपने पिछले दिनों में रूस को छोड़ कहीं गए भी नहीं, तथापि उनका शरीर तो रूस में रहता था किन्तु उनकी प्रखर आंखे सारे संसार और मनुष्यमात्र के हित के निरीक्षण में लगी रहती थीं। उनकी सहानुभूति सार्वदैशिक थी, उनकी सेवाएँ पूर्व और पश्चिम, काले और गोरे दोनों ही के लिये समान रूप से थीं। और यह सब भगवान श्रीकृष्ण के वचनानुसार 'निष्कर्म' थीं—उनका केवल एक उद्देश्य मनुष्य जाति क्या, प्राणीमात्र का हित साधन था।

उनके लिये कोई भी विषय तुच्छ या बहुत बड़ा न था। इतिहास, दर्शन, सम्पत्ति शास्त्र—सभी में वे दखल रखते थे।

और उनकी विवेचना कुछ हास्यास्पद या तीसरे दर्जे की नहीं होती थी। उनका व्यक्तिगत प्रभाव इतना अधिक था कि उन्होंने शैक्सपियर का मज़ाक उड़ा डाला, सर्वप्रिय आधुनिक फ़ैशन की उच्च कलाओं की व्यर्थ की दिखावट की कलई खोल दी, किन्तु ऐसा करने में भी किसी ने उनके इन प्रयत्नों का मज़ाक उड़ाने का साहस नहीं किया। रूस के निरंकुश ज़ार को भी उनको चुप करने का साहस नहीं हुआ, जब रूस में उदार दल वालों को दण्ड मिल रहा था, दण्ड ही नहीं, उनके प्राण अपहरण किये जा रहे थे, उस समय उन्होंने रूस सरकार से कहा था कि यदि साहस हो तो मेरे इस बुड्ढे और दुर्बल गले में रस्सी डाल इसको फांसी दे दो। उनके इन वचनों से सारा यूरोप स्तम्भित रह गया किन्तु रूस सरकार का साहस उस महात्मा का बाल भी बांका करने का नहीं हुआ।

वे भविष्य में पहिले तो केवल अपनी साहित्य सेवा के लिए जीवित रहेंगे। उनके उपन्यासों में मनुष्य स्वभाव के अनुपम चित्र हैं। उनके नाटक, गल्प, सामाजिक और धार्मिक निबन्धों में मनुष्य को अपनी ओर खींच लेने की शक्ति है। उनसे उनकी सहृदयता टपकी पड़ती है। येही उनको संसार में अमर रखने के लिये यथेष्ठ हैं। किन्तु इसके साथही जब हम यह देखते हैं कि उनका जीवन ही एक अपूर्व नाटक था, और उनका व्यक्तिगत प्रभाव इतना अधिक था, तभी हमें विश्वास हो जाता है कि वे संसार में अवश्य ही अमर रहेंगे।

और हमारा यह विश्वास केवल कल्पना ही कल्पना

नहीं हैं। संसार का विचार इस समय तीन और टाल्स्टाय की बतलाई राहों पर चल रहा है। पहिले तो यह कि नाना देशों में लोग सादी तौर से जीवन व्यतीत करने का सन्तोष और सुख समझने लगे हैं। वे समझने लगे हैं कि पृथ्वी की उपज से ही मनुष्य की मुख्य आवश्यकताएँ भलीभाँति पूरी हो सकती हैं। वे यह देखने लग गये हैं कि मस्तिष्क के श्रम के साथ शारीरिक परिश्रम भी आवश्यक है और खुली हवा में रहना तथा सादा निरामिष भोजन ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है। टाल्स्टाय की दूसरी बात जिस पर मनुष्य का विचार चलरहा है-आज कल यूरोप के विचारशील लोगों को व्यग्र कर रही है। उनका कथन है कि युद्ध सभ्यता का लक्षण नहीं है और यद्यपि आज यूरोप युद्ध में मग्न है पर यह युद्ध भी चिरन्तन शान्ति की भूमिका है। और यूरोप आज इस प्रश्न को हल करने में पूर्णतया लगा है। टाल्स्टाय की तीसरी बात जिसने संसार में प्रभाव किया है वह रूस का अत्याचार है। उसके विषय में हमें अधिक कुछ कहना नहीं है।

एक समय था जब टाल्स्टाय के बारे में समालोचक कहा करते थे कि 'उनके विचार कितने सुन्दर, किन्तु कितने असम्भव हैं।' पर वे समालोचक आज नहीं रहे। आज भविष्य में विश्वास रखनेवाले समालोचकों का समय है जो कहते हैं कि नैपोलियनने उस काल का अन्त किया जिसका सिद्धान्त रक्तपात और दासत्व था, किन्तु टाल्स्टाय ने उस युग का आरम्भ किया है जिसका सिद्धान्त वाक्य सहकारिता और विचार की स्वाधीनता है।

टाल्स्टाय को अमर रखने के लिये शहीद होने की आव-

श्यकता नहीं थी। उनका सारा जीवन ही मनुष्य के हितरूपी बलि-स्थान पर बलि हो चुका था। भविष्य सन्तान उनको एक ऐतिहासिक पुरुष कहकर याद करैगी और इसलिए याद करैगी कि उन्होंने जड़विचारग्रस्त यूरोप में आध्यात्मिक विचारों का आविर्भाव किया। भविष्य सन्तान उन्हें इसलिए स्मरण करेगी कि उन्होंने असंख्य दीन दुखियों का पक्ष लिया था। और वह उनकी स्मृति इस लिए चिरस्थायी रखैगी कि उन्होंने पुराने विचारों में नवीन आत्मा का आविर्भाव किया। उन्होंने पाप के लिए दया और पवित्रता की पिपासा लोगों में उत्पन्न की। संसार उन्हें इसलिये कृतज्ञतापूर्वक याद रखैगा कि वे मनुष्य हृदय की दुर्बलता को और उसके बल को भली भाँति समझते थे—और वह उनके विचार, शान्ति, परिश्रम, आत्मबल और पवित्रता के सन्देसे को अपने हृदय में सर्वोच्च स्थान देगा

'His body lies mouldering in the grave,
But his soul marches on.'

उनका शरीर तो धूलधूसरित हो समाधि में पड़ा है किन्तु उनकी आत्मा उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रही है। वे संसार में अपनी आत्मा और विचारों के स्वरूप में वर्तमान हैं और अनन्त काल तक रहेंगे।

॥ इति श्री ॥